❋ गुण गागर ❋

(अन्त्याक्षरी एवं मात्राक्षरी उपयोगी दोहे)

– मुनि श्री कन्हैयालाल जी

पुस्तक-प्राप्ति स्थान

१ महालचन्दजी रायचन्दजी कोठारी
पो० छापर
जिला चूरु (राजस्थान)

२ श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा
गोकल रोड,
पो० लुधियाना (पंजाब)

प्रथम संस्करण—१०००

११ सितम्बर १९६९

मूल्य ८० पैसे

मुद्रक
रूप रंग प्रिंटिंग प्रेस
इकबाल गंज रोड, सामने गुलचमन गली
लुधियाना १

मन को ।

साहित्य की सृष्टि जीवन की सृष्टि है। साहित्य का विकास मानव का विकास है। साहित्य शब्द मे ही स-हितता की अभिव्यक्ति निहित है। साहित्य शब्द लघु है, फिर भी इसके अर्थ की विशालता अद्वितीय है। साहित्य शब्द की परिभाषा है, 'अपने आप को पहचानना'। वैदिक ऋषियो ने कहा है—'आत्मान विद्धि' आत्मा को पहचानने का प्रयत्न करो। भगवान महावीर की वाणी मे—'सपिक्खए अप्पगमप्पएण' अपनी आत्मा को आत्मा से देखो। साहित्य-निर्माण का लक्ष्य-सहजानद मे विहरण करना। भारतीय ऋषियों ने 'स्वान्तः सुखाय' को ही साहित्य का उद्देश्य माना है। आचार्य श्री तुलसी ने कहा—स्वान्तः सुखाय के साथ साथ स्वान्तः शोधाय के विशेष लक्ष्य को भी स्मृति मे रखना चाहिए। मुन्शी प्रेमचन्द जी ने आत्मा की प्रतिध्वनि को साहित्य कहा है। इस प्रकार साहित्यकारो दार्शनिको की विविध धाराओ का फलित हमे यही उपलब्ध होता है कि आनन्द व परि-शोधन के लिए जो प्रबुद्ध करता है, वही साहित्य है।

निबन्ध, कविता, कहानी, मुक्तक, दोहा आदि ये सब साहित्य-शिखरी की सुन्दरतम उपशाखाए हैं। इतिहास

वेत्ताओं की लेखनी से ऐसा अनुभूत हुआ कि दोहा साहित्य का प्रचलन व आकर्षण आज ही नहीं अपितु हजारों वर्ष पूर्व भी था, तुलसी, कबीर व सूर के दोहे इस बात का ज्वलंत प्रमाण है। उनके अध्यात्म शिक्षा अनुप्राणित दोहे जन जन की कण्ठाग्र भूमि पर मयूर की भान्ति नृत्य कर रहे हैं। उन महाकवियों की स्मृतियां उभारने में "गुण गागर" पुस्तक जन-जन के हाथों में है। इस में ११६ दोहाष्टक हैं। अन्त्याक्षरी के साथ साथ विशेष कर मात्राक्षरी उपयोगी आध्यात्मिक नैतिक व सामाजिक शिक्षा से अवगाहित ६२८ दोहों का सरलतम भाषा में सृजन करने का प्रयत्न किया गया है, जिससे साधारण से साधारण व्यक्ति भी इनका रसास्वादन कर सके।

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी का स्नेह भरा वात्सल्य ही मेरे जीवन-निर्माण में जहां साधक बना वहां मुनि श्री गणेशमल जी का २८ वर्षीय सतत सान्निध्य भी कथा साहित्य, संगीत साहित्य, दोहा साहित्य आदि विविध क्षेत्रों में बढ़ने में निमित्त बना। मुनिश्री का सहवास हर दृष्टि से मेरे लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। मुनिश्री की प्रबल प्रेरणा से दिल्ली, लुधियाना, अजमेर जयपुर, उदयपुर, बीकानेर आदि अनेकों शहरों की सैकड़ों विद्यालयों

व महाविद्यालयों मे अणुव्रत विचार-सरणि को प्रसारित करने निमित्त जाने का सौभाग्य मिला, हजारो विद्यार्थियों से संपर्क हुआ। उनके हृदयगत विचारो को अवगति मिली। नये-नये अनुभवो की उपलब्धि हुई। विद्यार्थियो में अनुशासनहीनता, अविनय, तोड़-फोड, हड़ताल व गुरुओ के प्रति अश्रद्धा की लहर देखने को मिली। हृदय मे चिन्तन चला। इन सव का प्रतिकार करने के लिए नैतिक शिक्षा अणुव्रत छात्रोपयोगी नियम तो उपयोगी हैं ही पर दोहा साहित्य भी एक सरस साधन है। क्योकि दोहा छोटा व पद्यमय होने के कारण प्रत्येक विद्यार्थी कण्ठस्थ कर सकता है। इसी लक्ष्य को लक्षित कर प्रस्तुत पुस्तक का निर्माण किया गया है।

विद्यार्थी समाज अन्त्याक्षरी के लिए विशेष रुचि रखते हैं। वे इन दोहो को कण्ठस्थ कर अपनी हृदयस्थ आकाक्षा की तृप्ति मे सलग्न वनेंगे और इनके अनुरूप अपने जीवन को ढालने का प्रयत्न करेंगे तो अवश्य ही स्व-जीवन-निर्माण मे वे सफल होंगे ऐसा मेरा विश्वास है।

१४ सितम्बर, १९६८
चोपडा फैक्ट्री, श्रीकरनपुर
(राजस्थान)

—कन्हैया मुनि

अनुक्रम

गुण-गागर

[१]

- क -

करुणा-सागर ! देव ! दो, आत्मोज्जागर-ज्ञान।
जनता-जागर-हित करूं, "गुण-गागर" निर्माण ॥ १ ॥

करते है उद्योत नित, तुलसी दिव्य दिनेश।
मिट जाता अज्ञान का, जिससे तिमिर अशेष ॥ २ ॥

कर्मों के संयोग से, सुखी-दुखी इन्सान।
सुख दुःख दाता अपर को, क्यों माने मतिमान ॥ ३ ॥

कदाग्रही नर का कभी, क्या रहता मन शात ?
पाता है परलोक मे, नारक-दुःख नितान्त ॥ ४ ॥

कटुता आपस मे वढ़े, तज ऐसा व्यवहार।
सरस-सरल वर्ताव से, मित्र वने ससार ॥ ५ ॥

कहना करता जो नही, निज मे नही विवेक।
उसके जीवन मे स्वतः, आते कष्ट अनेक ॥ ६ ॥

करुणा-हीन मनुष्य का, कैसे हो उत्थान।
ऊपर भू मे वीज के, उद्‌गम का न विधान ॥ ७ ॥

कमल सलिल से सर्वदा, रहता ज्यों निर्लिप्त।
'मुनि कन्हैया' संत त्यो, जग से नित्य अलिप्त ॥ ८ ॥

-का-

काल बिताया है बहुत करके भोग सरोग ।
आत्म रमण अब तो करो, दुलभ नर-भव-योग ॥ १ ॥

कानों से पर-गुण सुने, (जो) बोले वचन विचार ।
उस मानव का जगत मे, होता है सत्कार ॥ २ ॥

काम अटकता नहीं, पुरुषार्थी का अत्र ।
नही मनोरथ से मिले, काय सिद्धि का छत्र ॥ ३ ॥

कानों को कुंडल मिले, स्थिरता के सयोग ।
आँखों को अंजन मिला अस्थिरता के योग ॥ ४ ॥

काया धन छाया समझ, इन्द्र धनुष-सम भोग ।
रे चेतन ! अब चेत तू, स्वप्न-तुल्य सयोग ॥ ५ ॥

काग-संग से हंसने, खोये अपने प्राण ।
सुन करके दृष्टान्त यह तजे कुसंग महान ॥ ६ ॥

कारा मिलती चोर को, जीवन होता नष्ट ।
सहने पड़ते है वहा परवशता से कष्ट ॥ ७ ॥

कान—पकड़ना धर्म है, जब हो नर की भूल ।
मुनि 'कन्हैया' बस यही, है सुधार का मूल ॥ ८ ॥

–कि –

कितना जीना है यहां, नही किसी को ज्ञात।
क्यो न सुकृत नर! कर रहा, सुगुरु-वचन अवदात ॥ १ ॥

किसी पुरुष का तनिक भी, बुरा न करना अत्र।
जितना हो उतना भला, करना है सर्वत्र ॥ २ ॥

किस्मत के आधार से, बनता नर धनवान।
घर-घर टुकडा मागते, बिना भाग्य मतिमान ॥ ३ ॥

किरणे फूटी पूव मे, जाग-जाग इन्सान।
आत्म-निरीक्षण के लिए, है यह समय प्रधान ॥ ४ ॥

किस्सा सुनकर ध्यान से, हरिश्चन्द्र का मित्र!
कभी सत्य मत छोड़ना, होगा जन्म पवित्र ॥ ५ ॥

किसी पराई नार पर, बुरी न रखना दृष्टि।
मा, भगिनी की दृष्टि से, होती सुख की वृष्टि ॥ ६ ॥

किस्मत होती मनुज की, सदाचार से स्वस्थ।
यही एक है सौख्य का, सचमुच मार्ग प्रशस्त ॥ ७ ॥

किया कभी सद्धर्म क्या, पाकर नर-अवतार।
'मुनि कन्हैया' धर्म बिन, है जीवन बेकार ॥ ८ ॥

-कु-

कुशल प्रशासक नित रहे पक्षपात से दूर।
उसके शासन में बहे, शान्ति नदी का पूर॥ १॥

कुटिल न छोडे कुटिलता, चाहे करो प्रयास।
क्या घृत सिंचित नीम में देखा कभी मिठास?॥ २॥

कुत्सित पथ को छोड तू, है यह दुखद महान।
सुखद सत्य-सन्मार्ग पर, करना अभय प्रयाण॥ ३॥

कुलनायक होता वही मेरु भान्ति जो धीर।
धनी विशद आचार का, सागर सम गभीर॥ ४॥

कुशल प्रशासक है वही, जिसका शुद्धाचार।
नीति निपुण कोमल हृदय, सब से सम व्यवहार॥ ५॥

कुपित न रख सकता कभी, गुरुजन का सम्मान।
मुख से अकबक बोलता भूल स्वयं का भान॥ ६॥

कुलनाशक रावण हुआ, कुल-दीपक थे राम।
मुख-मुख पर श्रीराम का, वसुन्धरा में नाम॥ ७॥

कुटिल छुरी है उदर मे, मुख में रखता राम।
'मुनि कन्हैया' वह नही, पा सकता आराम॥ ८॥

-ख-

खरे वनो खारे नही, है यह हितकर वात।
जैसी हो वैसो कहो, सद्भावो के साथ ॥ १ ॥

खड्ग क्षमा का हाथ में, लेकर के तत्काल।
क्यो न मारता क्रोध को, पाकर ज्ञान विशाल ॥ २ ॥

खग-समान उड़ता रहे, चञ्चल मन हरबार।
इसको काबू मे करो, यदि पाना भव-पार ॥ ३ ॥

खरा मनुज हर क्षेत्र में, पाता है सम्मान।
खोटे का हर स्थान मे, होता है अपमान ॥ ४ ॥

खल की सगति मत करो, चाहे हो विद्वान।
मणि से भूषित सर्प क्या, नही करे नुकसान ? ॥ ५ ॥

खरी सीख देकर करे, कौन वैर-परिहार।
कलह कराने के लिए, रहते सव तैयार ॥ ६ ॥

खतरा रहता शहर मे, दुर्घटना का स्पष्ट।
नही रहे यदि सजगता, (तो) होता जीवन नष्ट ॥ ७ ॥

खल खलता तजता नही, उसका यही स्वभाव।
"मुनि कन्हैया" क्यो तजें, तू तेरा सद्भाव ॥ ८ ॥

-खा-

खान गुणों की सत्य है सत्य बड़ा है धर्म।
सत्य-बिना संसार में, पनपे कुत्सित कर्म ॥ १ ॥

खाली बादल गरजता, किन्तु कहां जल-वृष्टि।
चातक! इससे क्यों करे, व्यर्थ प्रेम की सृष्टि ॥ २ ॥

खान पान जिस मनुज का, अगर नहीं है शुद्ध।
उस मानव का मन कभी रहता नहीं विशुद्ध ॥ ३ ॥

खाद्य समस्या कब मिटे जब तक संग्रह वृत्ति।
दुख दुविधा का मूल है, जग में लोभ प्रवृत्ति ॥ ४ ॥

खाज सुहाती है नहीं, बिना पाव के रोग।
मोह बिना भाते नहीं, नर को नश्वर भोग ॥ ५ ॥

खाली थोथी बात पर हो न मनुज का मोल।
बोलो कम ज्यादा करो, खूब बढ़ेगा तोल ॥ ६ ॥

खाद्य पदार्थ न मिल रहे, बिना मिलावट शुद्ध।
इसी लिए ही कर रही, जनता अन्तर युद्ध ॥ ७ ॥

खाता में भी है नहीं, सच्चाई का काम।
"मुनि कन्हैया" हो रहा, व्यापारी बदनाम ॥ ८ ॥

-खि-

खिन्न-मना रहना नही, रखना मन उत्साह।
करते रहना सत्क्रिया, मिटे दुःख को दाह। १ ॥

खिन्न न होना चाहिए, देख आपदा घोर।
सहनशील नर को मिले, दुख-सागर का छोर ॥ २ ॥

खिर जाने से कर्म सब, प्रकट हुवे चिद्रूप।
आत्मा कर्म-प्रबन्ध से, भूल रही निज रूप ॥ ३ ॥

खिचने से हर बात को, बढता मन का भेद।
निश्चित ही होता त्वरित, मित्र भाव का छेद ॥ ४ ॥

खिडकी आश्रव द्वार की, बन्द रखे मतिमान।
आत्म-गेह मे फिर कभी, आ न सके अघ-श्वान ॥ ५ ॥

खिले पुष्प को देख कर, मत कर मधुकर ! स्नेह।
मुरझायेगा एक दिन, वह तो निःसदेह ॥ ६ ॥

खिल्ली करना मत कभी, यह झगड़े का मूल।
हुआ पाडवो से अत, दुर्योधन प्रतिकूल ॥ ७ ॥

खिचातानी छोड दो, रहे परस्पर प्रेम।
'मुनि कन्हैया' हर जगह, पाओगे तुम क्षेम ॥ ८ ॥

-खु-

खुल करके गुरु को कहे जो कि पेट की बात।
हो जाता है शिष्य वह, आराधक साक्षात ॥ १ ॥

खुद को जो वश मे रखे उसके वश ससार।
कहलायेगा वह मनुज वसुधा का शृ गार ॥ २ ॥

खुद गरजी भरते कई, अपना घर हरबार।
'मुनि कन्हैया' वे कभी, करे न पर उपकार ॥ ३ ॥

खुश होते हैं भक्त जन, पाकर सद्गुरु-योग।
जसे चातक मेघ का, पा करके सयोग ॥ ४ ॥

खुश्क हृदय नर से नही, करना मत्री पुत्र ! ।
जीवन म वह जानता नही प्रेम का सूत्र ॥ ५ ॥

खुशबू वाले फूल को, मिलता उत्तम स्थान।
गुणवानों का हर जगह, होता है सम्मान ॥ ६ ॥

खुशबू अपनी छोडकर, जाते पुरुष महान।
जग ध्याता है आज भी राम नाम का ध्यान ॥ ७ ॥

खुद की गलती का जिन्हें भान नही तिलमात्र।
"मुनि कन्हैया' ये नही बन सकते गुण-पात्र ॥ ८ ॥

—ग—

गहन तत्त्व का गुरु विना, हो न सके सद्ज्ञान।
सूर्य-विना होता नही, तामस का अवसान॥ १॥

गम खाने वाला मनुज, वनता जगशिर-मौर।
उसके गुण गाते सदा, मानव चारों ओर॥ २॥

गड्ढा पर-हित खोदता, जो मानव अनजान।
गिरता उसमे वह स्वयं, पाता दुःख महान॥ ३॥

गला काटना है नही, न्यायी जन का काम।
पक्षपात को छोड़कर, करे न्याय अभिराम॥ ४॥

गला फाडना समझते, वुद्धिमान वेकार।
देते परिमित वोलकर, अपने भव्य विचार॥ ५॥

गले लगाना दुष्ट को, है न सुखद यह काम।
उससे रहता दूर जो, वह पाता आराम॥ ६॥

गहरा मनुज न छलकता, रखता दिल गंभीर।
नही वोलता वह घड़ा, जिसमे पूरा नीर॥ ७॥

गहराई से सोचकर, करता जो हर-कार्य।
"मुनि कन्हैया" सफलता, मिले उसे अनिवार्य॥ ८॥

-गा-

गाफिल मत रहना कभी गुरु की शिक्षाधार।
सावधान नर पा सके, साध्य सिद्धि, अविकार॥

गायक सच्चा है वही, जो गाता प्रभु-नाम।
औरों को गा क्यों करे, अघ संचय बेकाम? ॥२

गाना गुण गुणवान के, मुक्त कण्ठ से रोज।
अगर गमाता है तुझे, कर्म-शत्रु का खोज॥३

गाली देकर क्यों करे, अपनी जीभ खराब।
मीठी बोली से बढ़े नर! जीवन की आब॥४

गांठ बांधते कुटिल नर मन को रख कर म्लान।
ऊपर मीठे बोलते, अन्दर खोट महान॥५

गांठ न रखनी चाहिये है यह शल्य-समान।
सरल हृदय में धर्म का होता है स्थिर थान॥६

गाली सुनने से नहीं होता तन में छेद।
समता से सब सहन कर क्या करता है खेद॥७

गाय दिल को खोल कर, गुरुवर के गुणगान।
'मुनि कन्हैया" भक्त का, यह कर्त्तव्य महान॥८॥

-गि-

ारि की भीषण अग्नि पर, जाती सबकी आंख।
रो में जो जल रही, नही देखते झाख ॥ १ ॥

ारते गिरते मनुज का, हाथ पकड तत्काल।
ौन निकाले गुरु विना, विना स्वार्थ प्रतिपाल ॥ २ ॥

ारना तो आसान है, किन्तु कठिन उत्थान।
वस भवन का पलक मे, वर्षो से निर्माण ॥ ३ ॥

ाननी है उस मनुज की, सत्—पुरुषों मे आज।
ी का भी हित करे, भूल वैर निर्व्याज ॥ ४ ॥

ारगिट जैसे बदलता, आत्मा अपना रूप।
र्मों का यह खेल है, बतलाते जिन-भूप ॥ ५ ॥

ंगडगिडाना (आजिजी करना) मत कभी,तू चेतन ! बलवान।
ौन तुझे दुख दे सके, अपने को पहचान ॥ ६ ॥

ोवपिच (अस्पष्ट) तेरे वचन को, समझ सकेगा कौन? ।
ोल स्पष्ट प्रिय मधुर वच, अथवा रहना मौन ॥ ७ ॥

ारता वह साधक नही, जो है श्रद्धावान।
''मुनि कन्हैया'' कष्ट मे, रहता मेरु-समान ॥ ८ ॥

-गु-

गुण का ग्राहक, गुणि जनो, का करता सम्मान।
भील न कर सकता कभी मोती की पहचान॥१

गुरुवर ज्ञान प्रदीप से, करते दिव्य प्रकाश।
कौन करे रवि के बिना, अन्धकार का नाश? ॥२

गुटबन्दी होती नही सुखदायक तिलमात।
रहता है मध्यस्थ नित, साधक दिल अवदात॥३

गुस्से मे रहता नही मानव को कुछ ध्यान।
करता जल मे डूबकर, आत्म घात बेभान॥४

गुणि जन प्रतिदिन देखता, अपने दोष अशेष।
अपर गुणो का देखकर, पाता हर्ष विशेष॥५

गुप्त बात को पेट मे, रख पाता गम्भीर।
किन्तु पचा सकता नही, छिछला मनुज अधीर॥६

गुरुगम से उपलब्ध जो, ज्ञान वही फलवान।
केवल पुस्तक ज्ञान से, कौन बना विद्वान्? ॥७

गुड पर आती मक्खिया दौड-दौड हर वक्त।
'मुनि कन्हैया' स्वार्थ मे, सारा जग अनुरक्त॥८

-गु-

गुण का ज्ञाता, गुणि-जनो, का करता सम्मान।
भील न कर सकता कभी मोती की पहचान॥ १॥

गुरुवर ज्ञान-प्रदीप से, करते दिव्य प्रकाश।
कौन करे रवि के बिना, अन्धकार का नाश ? ॥ २॥

गुटबन्दी होती नही सुखदायक तिलमात्र।
रहता है मध्यस्थ नित, साधक दिल अवदात॥ ३॥

गुस्से मे रहता नही मानव को कुछ ध्यान।
करता जल मे डूबकर, आत्म घात बेभान॥ ४॥

गुणि जन प्रतिदिन देखता, अपने दोष अशेष।
अपर गुणो को देखकर, पाता हर्ष विशेष॥ ५॥

गुप्त बात को पेट मे, रख पाता गम्भीर।
किन्तु पचा सकता नही, छिछला मनुज अधीर॥ ६॥

गुरुगम से उपलब्ध जो, ज्ञान वही फलवान।
केवल पुस्तक ज्ञान से, कौन बना विद्वान् ? ॥ ७॥

गुड पर आती मक्खियां, दौड-दौड हर-वक्त।
'मुनि कन्हैया" स्वार्थ मे, सारा जग अनुरक्त॥ ८॥

- -

घड़े नये सम है सही, जीवन तेरा छात्र!।
भर करके सद्‌गुण अमृत, बनजा सच्चा पात्र ॥ १ ॥

घेर की ममता त्याग कर, बना सयमी शूर।
सकट मे रखता सदा, समता—रस भरपूर ॥ २ ॥

घटती जाती मनुज की, आयु अजुली—नीर।
क्यो न समय को साधता, धार धर्म का चीर ॥ ३ ॥

घडी सुनाती सीख है, गया समय अनमोल।
मुडकर के आता नही, आख हृदय की खोल ॥ ४ ॥

घट मे है भगवान तो, ढूढ रहा ससार।
चित्र! गोद-गत पुत्र को, खोजे घर—घर द्वार ॥ ५ ॥

घवराना मत पथिक! तू, देख भयकर कष्ट।
वढते रहना लक्ष्य पर, साध्य मिलेगा स्पष्ट ॥ ६ ॥

घटती वढती रे मनुज!, जीवन के दो पक्ष।
रहते दोनो स्थान मे, महापुरुष समकक्ष ॥ ७ ॥

धन—छाया समक्षणिक है, मानव! तेरा गात।
"मुनि कन्हैया" धर्म तू, करले दिल अवदात ॥ ८ ॥

-घ-

घात करो मत जीव की, अगर शान्ति की चाह।
परम अहिंसा—धर्म ही जग में सुख की राह ॥ १ ॥

घातक करता तत्त्वत, निज आत्मा की घात।
पाता वह संसार मे घोर दुःख साक्षात ॥ २ ॥

घातक करुणा—हीन बन, करता नर की घात।
नहीं सोचता वह कभी, मानवता की बात ॥ ३ ॥

घाटे का क्या काम है मिलता लाभ महान्।
'मुनि कन्हैया' है सही, धर्म एक वरदान ॥ ४ ॥

घाव वचन के ना मिटे, कर लाख उपचार।
अत तोलकर बोलते, ज्ञानी गुण—भण्डार ॥ ५ ॥

घायल की गति जानता जो है घायल आप।
वन्ध्या कभी न जानती, पुत्र—प्रसव — संताप ॥ ६ ॥

घास, धेनु के योग से, बनता पय अम्लान।
सत्संगति से तुच्छ भी बनता पुरुष महान ॥ ७ ॥

घाटा कुछ भी है नहीं, मिलता लाभ महान।
"मुनि कन्हैया" धर्म कर, चिन्ता रत्न—समान ॥ ८ ॥

-घि-

घिचमिच (मिलावट) करके बेचते व्यापारी जो माल ।
उनका दोनो जन्म मे, होगा बुरा हवाल ।। १ ।।

घिघियाते (लडखडाते) मानव सदा, भव-वन मे बिन ज्ञान ।
कैसे उनको मिल सके, मुक्ति-मार्ग सुख-खान ।। २ ।।

घिसते चन्दन को मनज, पत्थर पर अविराम ।
फिर भी वह तो जगत को, देता सुरभि प्रकाम ।। ३ ।।

घिरा स्वय को देखकर, वीर न बने अधीर ।
कर्म चक्र को तोडकर, पाता भवजल—तीर ।। ४ ।।

घिस जाते है कर्म भी, अगर करे उद्योग ।
भाग्य भरोसे क्या मिले, सुप्त सिह को भोग ? ।। ५ ।।

घिरा हुआ है जीव यह, मोह—शत्रु से मित्र ।
कैसे मिल सकता उसे, अविचल बोध पवित्र ।। ६ ।।

घिरत राख मे ढोलता, वह कहलाता अज्ञ ।
देता है न अपात्र को, ज्ञान कभी तत्वज्ञ । ७ ।।

घिसपिस जो करता रहे, उसका क्या इतबार ।
"मुनि कन्हैया" क्या उसे, मिलता है सत्कार ? ।। ८ ।।

-घु-

घुन–समाल इन्द्रिय विषय, ज्ञानी माने स्पष्ट।
आत्म धर्म मय अन्न को, कर देता है नष्ट ॥ १ ॥

घुडसवार ! तू हाथ में, रखना अश्व लगाम।
उससे तेरी है विजय पहुचेगा निज धाम ॥ २ ॥

घुसे द्वार को तोड कर तेरे घर मे चोर।
लूट रहे धन—संपदा मत ले निद्रा घोर ॥ ३ ॥

घुटी हुई दीवार मे पडता है प्रतिबिम्ब।
शुचि आतमा मे देशना, कार्य करे अविलम्ब ॥ ४ ॥

घुटनों मे सिर दे रहा, तू है चिन्ता—ग्रस्त।
चिन्तातुर को सुख नही, सुखी वही जो मस्त ॥ ५ ॥

घुट घुट कर (कष्ट भोगकर) मरते मनुज, पापोदय के योग।
बहुत कठिन है भोगना, पूर्व—कर्म का भोग ॥ ६ ॥

घुल घुल कर बातें करे, सुख में सब परिवार।
हो जाते हैं दूर सब, जब हो दुःख—प्रसार ॥ ७ ॥

घुल ! जाना सद्धर्म मे, जसे पय में नीर।
'मुनि व हैया" यदि तुझे, पाना है भव—तीर ॥ ८ ॥

-च-

चरम-लक्ष्य तक पहुंचना, उद्योगी का काम।
पा सकता क्या आलसी, लक्ष्य-सिद्धि अभिराम ?॥ १ ॥

चमत्कार को है यहां, नमस्कार रे मित्र!।
कौन धर्म को समझकर, बनता आज पवित्र ? ॥ २ ।

चपल तुम्हारी संपदा, सध्या—राग —समान।
फिर भी उसको देखकर, करता मन अभिमान ॥ ३ ॥

चलित न होता चित्त है, सासारिक सुख देख।
साधक करता साधना, भव—विरक्ति अतिरेक ॥ ४ ॥

चकमा देकर अन्य को, फूल रहा तू आज।
पर, रोना है कल तुझे, और न इतर इलाज ॥ ५ ॥

चतुर पुरुप जग मे वही, जो कि करे उत्थान।
अपना हित साधे नही, वह है मूर्ख महान ॥ ६ ॥

चरितवान नर निज-चरित, रखता है अम्लान ?।
घर्पण—छेदन ताप से, स्वर्ण हुआ कव म्लान ॥ ७ ॥

चरण वढाना है अटल, नैतिकता की ओर।
"मुनि कन्हैया" नीति से, वनता नर शिर-मौर ॥ ८ ॥

-चा-

चाबुक रखना हाथ में मन घोडा उद्दड।
खुला छोडते ही इसे देता दुख प्रचड॥ १॥

चालबाज की बात पर मत करना विश्वास।
धोखा देता अन्त मे, जो है माया—दास॥ २॥

चाल—चलन जिसके बुरे उसको दुख सबत्र।
चरितवान सुख—शान्ति से, रहता अत्र परत्र॥ ३॥

चार—दिनो की चादनी, रे मानव! मत फूल।
हो जायेगी एक दिन, तेरी काया धूल॥ ४॥

चार चाद लगता तभी, शीलवती यदि नार।
क्या वश्या का स्तुत्य है, रूप और शृगार?॥ ५॥

चार—आख करता मनुज, जो पर—नारी साथ।
घोर दड उसको तुरत, मिलता हाथो—हाथ॥ ६॥

चातक रहता मेघ मे, सत ध्यान में लीन।
जिसको जो है प्रिय सदा, वह उसमें तल्लीन॥ ७॥

चाल ढाल जिसकी खरी उससे सब निशक।
'मुनि कन्हैया" सुखद है, उस मानव का संग॥ ८॥

-चि-

चिन्तन—अनुशीलन- मनन, करते है जो दक्ष।
शास्त्रो का नवनीत वे, पाते है प्रत्यक्ष ॥ १ ॥

चिरस्थायी इस जगत में, रहता कौन विलोक।
जो जन्मा वह एक दिन, जाएगा परलोक ॥ २ ॥

चिकने घट पर बूद कब, टिक सकती है मित्र !।
सीख न लगती है उसे, जिसका दिल अपवित्र ॥ ३ ॥

चिता जलाती मृतक को, चिन्ता तो सह जीव।
इन दोनो से देख लो, है यह भेद अतीव ॥ ४ ॥

चित्त लगाकर जो पढ़े, वह पाता है ज्ञान।
मन की स्थिरता के बिना, कौन बना विद्वान ? ॥ ५ ॥

चित्त न लगता है वहा, जहा ज्ञान की बात।
निदा विकथा में रहे, मग्न—मना विख्यात ॥ ६ ॥

चिन्मय चेतन ! तू बना, कर्मों से परतन्त्र।
करके सच्ची साधना, बनजा शीघ्र स्वतन्त्र ॥ ७ ॥

चित्स्वरूप के ध्यान से, मिलता है आराम।
"मुनि कन्हैया" है यही, सबसे उत्तम काम ॥ ८ ॥

-चु-

चुभती कहता बात क्यों, क्या आयेगा हाथ ? ।
मौन साधता क्यों नही, सुधरे बिगडी बात ॥ १ ॥

चुटकी भरते (पलमे) उड गया, पखी पाखें तान ।
सभी कल्पना रह गई, चला गया इन्सान ॥ २ ॥

चुगल खोर का काम है, पर का भरना कान ।
आदत का लाचार वह, खोता अपनी शान ॥ ३ ॥

चुटकी भरना मत कभी (व्यग करना), रे मानव ! मतिमान ।
वाली के अविवेक से, होता अति नुकसान ॥ ४ ॥

चुटकी लेना है नही सभ्य पुरुष का काम ।
आदर पूर्वक बोलकर, स्वय जगाता नाम ॥ ५ ॥

चुन-चुन करके जो करे, पर—गुण मुक्ताहार ।
वह मानव बनता न क्या, भूतल का श्रृगार ? ॥ ६ ॥

चुरा-चुरा कर सम्पदा, बनते मालोमाल ।
किन्तु टिकेगी वह नही, आखिर है बेहाल ॥ ७ ॥

चुगली खाकर रे चुगल !, क्यों ढोता अघ—भार ।
"मुनि कन्हैया" क्यो नही, करता पर—उपकार ? ॥ ८ ॥

छल कपटाई से वना, क्या कोई विद्वान ? ।
अन्यायार्जित वित्त का, निश्चित ही अवसान ॥ १ ॥

छलना को छलना त्वरित, मुख्य कार्य यह मित्र ! ।
मजिल पाएगा सही, सुखकर परम पवित्र ॥ २ ॥

छद्म—रहित ही साधना, लाती सदा निखार ।
उससे वनता जीव यह, अजर अमर अविकार ॥ ३ ॥

छलनी सूई को कहे, सुन तू मेरी वात ।
तेरा छोटा छेद यह, करता दिल पर घात ॥ ४ ॥

छद्म रहित व्यवहार से, दुश्मन बनता मित्र ।
श्रौर धर्म—आराधना, होती परम पवित्र ॥ ५ ॥

छवि तेरी तू देख ले, श्रतर आखे खोल ।
हो जायेगा सहज मे, आत्म—दर्श—अनमोल ॥ ६ ॥

छटा निराली देखकर, वाह्य जगत की मित्र ! ।
मत करना मन को विकृत, रखना सतत पवित्र ॥ ७ ॥

छल—वल करके लूटते, तस्कर पर—धन माल ।
"मुनि कन्हैया" अन्त मे, पाते दुःख विशाल ॥ ८ ॥

-छ-

छात्र ! तुम्हारी जिन्दगी, उज्ज्वल वस्त्र-समान।
इस पर लगे न कालिमा, रखना पल—पल ध्यान ॥ १ ॥

छानबीन कर गुरु करो (जो) निर्लोभी निर्मोह।
लोभी गुरु कब तारते, जिनके धन से मोह ॥ २ ॥

छाती जलती है नही, पर की देख समृद्धि।
ऐसे मानव जगत मे, पाते सुख की ऋद्धि ॥ ३ ॥

छात्रो ! शासन में रहो, बना वश—अवतंस।
शोभा देता क्या कभी ?, तोड— फाड—विध्वंस ॥ ४ ॥

छाता पत्थर को करो, जब संकट का स्पर्श।
सध जाएगा साध्य फिर, बिना किसी संघर्ष ॥ ५ ॥

छाती फटती (असह्य दुख) जोर से हो जब इष्ट वियोग।
धर्य, धर्म, आपत्ति मे, करता है सहयोग ॥ ६ ॥

छाप पड़े उस मनुज की, जिसका चरित उदार।
स्तुत्य कभी क्या हो सके, वेश्या का शृंगार ? ॥ ७ ॥

छाया नश्वर मेघ की, नश्वर संध्या—रंग।
"मुनि कन्हैया" क्या नही, नश्वर नर का अंग ? ॥ ८ ॥

-छि-

छिन्न-मूल बड-वृक्ष का, हो जाता है नाश।
श्रद्धा-शून्य समाज का, होता नही विकास ॥ १ ॥

छिन्न-भिन्न तू हो रहा, अस्थिरता के योग।
लक्ष्य प्राप्ति मे स्थैर्य का, आवश्यक सहयोग ॥ २ ॥

छिद्रान्वेषी मनुज की, रहे छिद्र पर आंख।
जैसे व्रण को मक्षिका, ढूढ रही नित झांक ॥ ३ ॥

छिद्र दूसरो के सदा, देख रहा तू मित्र!।
अपने दोषो पर कभी, ध्यान न देता चित्र ! ॥ ४ ॥

छिद्रान्वेषण छोड कर, कर तू गुण की खोज।
खूब बढेगा विश्व मे, उससे तेरा ओज ॥ ५ ॥

छिपे-छिपे चाहे करो, कोई भी तुम पाप।
पर, हो जायेगा प्रगट, वह तो अपने आप ॥ ६ ॥

छिप कर गुरु से जो रहे, वह अविनीत महान।
विनयवान गुरु के निकट, रह कर पाता ज्ञान ॥ ७ ॥

छिछली बातें छोड़ कर, जो करता स्वाध्याय।
"मुनि कन्हैया" शान्ति का, उत्तम यही उपाय ॥ ८ ॥

-छु-

छुटकारा ससार से, कब होगा ? भगवान ! ।
पल पल ऐसी भावना, भाते श्रद्धावान ।। १ ।।

छुरी कतरनी पेट में माला रखते हाथ ।
ऐसे कपटी मनुज को कहा सुगति साक्षात ।। २ ।।

छुप-छुप करके कर रहे नाचे कार्य अनाथ ।
(मगर) घडा पाप का एक दिन, फूटेगा अनिवार्य ।। ३ ।।

छुप जायें चाहे कहीं, किन्तु न छोडे काल ।
हार गये इससे सभी, बड़ बड़े भूपाल ।। ४ ।।

छुरी चला मत तू कभी, किसी जीव पर मित्र ! ।
आत्म-तुल्य सबको समझ, रखकर हृदय पवित्र ।। ५ ।।

छुरी बुरी है छद्म की, छोड मिले सुख—मूल ।
एक दिवस इस देह की, होगी निश्चित धूल ।। ६ ।।

छुआछोत के रोग से कौन बचा है आज ? ।
मानव होकर रख रहा, मानव का न लिहाज ।। ७ ।।

छुट्टी के दिन भी नहीं, करते हैं सत्सग ।
'मुनि कन्हैया" लोभ का, कैसे उतरे रग ।। ८ ।।

जडमति भी पडित वने, करो सतत अभ्यास।
कार्य असभव कुछ नही, अगर न तजे प्रयास ॥ १ ॥

जपते माला हाथ में, लेकर के अविराम।
पर, मन की थिरता विना, सिद्ध न होता काम ॥ २ ॥

जल आने से पूर्व ही, वाधो पक्की पाल।
वूढापे मे क्या कभी, होता धर्म विशाल ? ॥ ३ ॥

जटिल समस्या खाद्य की, जग में आज ज्वलत।
मन की तृष्णा का नही, आ सकता है अन्त ॥ ४ ॥

जग मे जमता है नही, कपटी का विश्वास।
अपने मायाचार से, करता अपना नाश ॥ ५ ॥

जज को रहना चाहिये, निःस्वार्थी — निष्पक्ष।
वरना हो सकता नही, सत्य—न्याय प्रत्यक्ष ॥ ६ ॥

जलना कभी न चाहिए, पर की वढती देख।
प्रमुदित होते क्यों नही. मिले लाभ अतिरेक ॥ ७ ॥

जन—जन-मन पावन वने. अणुव्रत का यह घोष।
'मुनि कन्हैया" तव मिले, नैनिकता को पोष ॥ ८ ॥

-जि-

जितना मीठा बोलता, मतलब से नर—राज ।
उतना वोले स्वार्थ विन, तो सुधरे सब काज ॥ १ ॥

जिद्दी अपनी जिद्द पर, अकड़ा रहे नितान्त ।
निज-हित-अहित न देखता, खोता जीवन कान्त ॥ २ ॥

जिह्वा-लोलुप को अगर, मिल जाये पकवान ।
फिर तो खाता ठूस कर, चाहे जाए प्राण ॥ ३ ॥

जिन जिन जपते हे प्रभो !, निकले मेरे प्राण ।
ऐसा अवसर कब मिले, एक यही है ध्यान ॥ ४ ॥

जिज्ञासा विन तत्त्व का, हो सकता क्या ज्ञान ?।
यही एक उत्थान का, कारण है वलवान ॥ ५ ॥

जिस नर पर सत्सग का, चढ जाता है रग ।
उसका जीवन चमकता, पाता शान्ति अभग ॥ ६ ॥

जिसने रोका है नही, अपना चचल चित्त ।
उस मानव ने क्या नही, खोया सयम—वित्त ? ॥ ७ ॥

जिम्मेदारी समझ कर, जो करते हैं काम ।
"मुनि कन्हैया" जगत मे, चमकाते वे नाम ॥ ८ ॥

- -

झगडालू' नर समझता, अपने को निर्दोष।
निज-अवगुण देखे बिना, मिटे न मन का रोष ॥ १ ॥

झल्लाना अच्छा नही, सुनकर कड़वी बात।
सहनशील मानव रखे, अपना मन अवदात ॥ २ ॥

झगडा करता पुत्र भी, मात—पिता के साथ।
इससे बढ़कर और क्या, है लज्जा की बात ? ॥ ३ ॥

झटपट करले धर्म तू, सिर पर घूमें काल।
जगा रहे गुरुवर तुझे, यह मौका मत टाल ॥ ४ ॥

झड़ी देख बरसात को, खुश होते कृषिकार।
(त्यो) गुरुदर्शन से भक्तजन, होते तृप्त अपार ॥ ५ ॥

झडप न करना चाहिये, कभी किसी के साथ।
उससे बढता वैर है, क्या आता है हाथ ॥ ६ ॥

झड़ जाते पत्ते सभी, पाकर पतझड़—संग।
पर, वसत ऋतु मे पुनः, क्या न खिलेगा रंग ? ॥ ७ ॥

झटके खाते जगत मे, बीता काल अनंत।
"मुनि कन्हैया" धर्म से, होगा उसका अंत ॥ ८ ॥

-ड-

डगर दिखादो ईश ! अब, मुक्ति नगर की आप ।
करें प्राप्त झट लक्ष्य को, मिट सकल संताप ॥ १ ॥

डटकर रहना नीति पर, होगा जय—जयकार ।
नीतिवान बनता त्वरित जन - जीवन - श्रृंगार ॥ २ ॥

डगर छोड़ना मत कभी, मतिशाली इन्सान ! ।
शूलों से है व्याप्त वन उज्जड़ मार्ग महान ॥ ३ ॥

डगमग—डगमग नाव यह डोल रही मझधार ।
खेवटिया गुरु के बिना, कौन लगाता पार ? ॥ ४ ॥

डरते रहना तू सदा बुरे काम से मित्र ! ।
नेक काम से पुरुष का, जीवन बने पवित्र ॥ ५ ॥

डगर बताते मोक्ष की, गुरुवर तुझे नितान्त ।
उस पर चलना तू सदा निःसंशय मन शान्त ॥ ६ ॥

डसे न शीतल सब को, क्रोध—सर्प विकराल ।
निर्विष अहि-वेष्टित रहे, चन्दन तरु की छाल ॥ ७ ॥

डग भरना मत पाप में, जो चाहे आराम ।
"मुनि कन्हैया" दे रहा शिक्षा आठों—याम ॥ ८ ॥

— ड —

डाल रहा है कीच मे, मानव! जीवन चीर।
भोगो मे आसक्त नर, पा न सके भव-तीर ॥ १ ॥

डाका घर घर डालते, पा करके अवकाश।
नही जगत मे जम सके, उनका फिर विश्वास ॥ २ ॥

डायन ईर्ष्या है खडी, हो करके विकराल।
आत्मोन्नति के मार्ग से, भटकाती तत्काल ॥ ३ ॥

डाक्टर का यदि जम गया, जनता मे विश्वास।
उसका ही हर—क्षेत्र मे, होता सफल प्रयास ॥ ४ ॥

डाली पर जो फूलता, फूल गुलावी रग।
मुरझा करके एक दिन, होगा क्या न विरंग ? ॥ ५ ॥

डाभ—शीप पर वूद का, होता अस्थिर वास।
वैसे ही नर देह का, होगा निश्चित नाश ॥ ६ ॥

डाह (ईर्ष्या) रोग से आज का, मानव है संत्रस्त।
इससे रहते दूर वह, पाते शान्ति प्रशस्त ॥ ७ ॥

डाट लगाते क्या नही, शिष्य करे जव भूल ?।
"मुनि कन्हैया" सुगुरु का, यही धर्म अनुकूल ॥ ८ ॥

-डि-

डिगा सका सगम नही, महावीर को लेश।
चले गये वे मोक्ष म कर कर्मों को शेष॥ १॥

डिगे नही निज नियम से महापुरुष मतिमान।
चाहे जलनिधि छोड द, निज सीमा का मान॥ २॥

डिग जाते कायर मनुज, देख अनेकों कष्ट।
किन्तु साधते साध्य को, जो है धीर प्रकृष्ट॥ ३॥

डिगना मत साधक कभी!, देख रूप अनुकूल।
चचल मन—घोडा सदा, चलता है प्रतिकूल॥ ४॥

डिगरी लेना है नही, ज्ञानार्जन का ध्येय।
अपने चरित-विकास का, पथ लेना है श्रेय॥ ५॥

डिग्गी म जल जो पडा, रहता है एकत्र।
निमल वह रहता नही, बहता नीर पवित्र॥ ६॥

डिब्बी मं जैसे रत्न, सार वस्तु सभाल।
त्यो आत्मिक सपत्ति का, रखना सतत खयाल॥ ७॥

डिगरी पाकर छात्र जो करता मन अभिमान।
"मुनि कन्हैया" वह नही पाता है सम्मान॥ ८॥

ढग देखकर विश्व का, रह जाते सब दग।
कथनी करनी मे यहा, कहां एक सा रग ?॥ १ ॥

ढलते दिन सब देखते, रहता कौन समान।
तीन अवस्था सूर्य की, उदय, अस्त, मध्यान्ह ॥ २ ॥

ढढोरा नित पीटते, कहते हम धर्मिष्ठ।
किन्तु दूसरो का सदा, करते बडा अनिष्ट ॥ ३ ॥

ढकने से निज छिद्र को, होगा क्या उद्धार ?।
ढोल जगत मे क्या नहीं, खाता रहता मार ?॥ ४ ॥

ढम ढम करते ढोल का, होता है क्या अर्थ ?।
वैसे ही वाचाल नर, बक—बक करता व्यर्थ ॥ ५ ॥

ढलते रवि की ओर जब, गया अचानक ध्यान।
क्या न हुआ हनुमान को, अस्थिरता का ज्ञान ॥ ६ ॥

ढलती मे सब दूर हैं, चढती में सब पास।
ऐसे स्वार्थी जगत का, कौन करे विश्वास ? ॥ ७ ॥

ढह जायेगे एक दिन, ये सब भव्य प्रसाद।
"मुनि कन्हैया" है नही, इनको स्थिर बुनियाद ॥ ८ ॥

-ढा-

ढाढस रख सकते नही, विपदा में जो लोग।
उनके जीवन मे कहा सपद् का सयोग?॥ १॥

ढाल जिधर होती उधर, जाता जल तत्काल।
विद्या वरती है उसे, जिसमे विनय विशाल॥ २॥

ढाई अक्षर प्रेम के पढना कठिन महान।
पुस्तकीय अध्ययन से, कौन बना विद्वान?॥ ३॥

ढाठा मुख पर बाधकर, करता चोरी चोर।
आखिर उसकी धूर्तता, होगी प्रकट सजोर॥ ४॥

ढास (डाकू) मनुज की नित रहे अपर वित्त पर दृष्टि।
उसके जीवन में कभी क्या होती सुख वृष्टि?॥ ५॥

ढाचा सारे देश का, बिगड रहा है आज।
नि स्वार्थी नेता विना कब सुधरे सब काज?॥ ६॥

ढाबा खोलो धर्म का ज्ञान—ध्यान पकवान।
ग्राहक लकर के उन्हें, करे आत्म उत्थान॥ ७॥

ढाड मारता (चिल्ला कर रोना) है वृथा आर्त्त ध्यान को छो
'मुनि कन्हैया" धर्म से, अपने दिल को जोड॥ ८॥

-त-

तजकर चिन्ता अपर की, खुद का करो सुधार।
मत लो पहले शीष पर, पर-सुधार का भार ॥ १ ॥

तप्त तवे पर बूद का, निश्चित है अवसान।
पात्र विना वर वस्तु की, रह सकती क्या शान ? ॥ २ ॥

तथ्य नही जिस बात मे, उस पर मत दो ध्यान।
सार-भूत सिद्धान्त का, करो ज्ञान अम्लान ॥ ३ ॥

तन्मय होकर के करो, दिल से प्रभु की भक्ति।
होगी आत्म-स्वरूप की, निःसशय अभिव्यक्ति ॥ ४ ॥

तप-जप होते क्रोध से, क्षण—भर मे ही नष्ट।
दारु—ढेर को अग्नि—कण, करता क्या न प्रणष्ट ? ॥ ५ ॥

तन की शुचि के हेतु जन, करते विविध प्रयोग।
पर, अन्तर की शुद्धि विन, व्यथ बाह्य उद्योग ॥ ६ ॥

तम से आवृत विश्व मे, सुगुरु एक आलोक।
उससे साधक देखता, अपनी आत्मा—ओक ॥ ७ ॥

तत्वों के सद्ज्ञान से, होता सम्यग् बोध।
"मुनि कन्हैया" पा सके, उससे शिवपुर—सौध ॥ ८ ॥

-ता-

तार-तार गुरुदेव ! तू, तू है धर्म—जहाज।
रख सकता तू एक ही, शरणागत की लाज॥ १॥

तानाशाही को कहा, आज जगत में स्थान।
साम्य—भावना के बिना, शासन कठिन महान॥ २॥

तारापति बिन यामिनो बिना दांत मातंग।
शील—धर्म बिन कामिनी, बिना धम नर—अंग॥ ३॥

तारे गिनते रात मे, होता जब उपवास।
भूख सहन करना कठिन, बिना साम्य—अभ्यास॥ ४॥

तार्किक युग में तर्क से, करते है सब ज्ञान।
पर, है तर्कातीत के, हित, श्रद्धा को स्थान॥ ५॥

ताले के भीतर पड़ा, बहुत कीमती माल।
चाबी ले ला सुगुरु से, करके भक्ति विशाल॥ ६॥

ताश खेलकर समय को, खोना मत बेकार।
गया 'समय आता नही, ज्यों सरिता की धार॥ ७॥

ताज बनेगा विश्व का जो है संयमवान।
"मुनि कन्हैया" चरित बिन, नही कही सम्मान॥ ८॥

-ति -

तिलभर भी रखते नही, दया—भावना लोग।
जब पैसे के लोभ का, लग जाता है रोग ॥ १ ॥

तिल का करता ताड है, मानव झगडाखोर।
अपने घर को फूक कर, पाता है दुख घोर ॥ २ ॥

तिल—भर दूपण देखता, औरो के सह—रोष।
खुद के तुझे न दीखते, पर्वत जितने दोष ॥ ३ ॥

तिनका भी आज्ञा विना, नही उठाते सत।
सग्रह करना है नही, जैन—साधु का पथ ॥ ४ ॥

तिमिराच्छादित जगत मे, अणुव्रत दिव्य दिनेश।
नैतिकता का कर रहा, परम प्रकाश विशेप ॥ ५ ॥

तितर-बितर तू हो रहा, मिले विना आलोक।
दीप जलाकर ज्ञान का, तू सत्पथ अवलोक ॥ ६ ॥

तिलक निकाले भाल पर, रखते माला हाथ।
मगर हृदय की मलिनता, नही मिटी साक्षात ॥ ७ ॥

तिर्यग् (वक्रता, गति को त्यागकर, सुखद सरलता धार।
"मुनि कन्हैया" क्यो नही, पायेगा दुख—पार ? ॥ ८ ॥

-तु-

तुच्छ समझ कर मत करो औरों का अपमान।
समझो प्राणी मात्र को, अपनी आत्म—समान॥ १॥

तुनक मिजाजी पुरुष का, कभी न जमता स्थान।
रहता है वह भटकता, चक्री—चाक समान॥ २॥

तुझे अभी तक है नहीं अपने घर का भान।
इसीलिये तू पा रहा, जग मे दुख महान॥ ३॥

तुलना हो सकती नही, गुरु का काय महान।
कर देते है बिन्दु को, वे तो सिन्धु समान॥ ४॥

तुलनात्मक अध्ययन से, होता ज्ञान विकास।
साम्य भावना सूय का, मिलता सतत प्रकाश॥ ५॥

तुरग तुल्य है चपल मन, फिरता चारो ओर।
धम—रश्मि से बाधकर, रखो इसे इक-ठौर॥ ६॥

तुलसी गुरु न सघ का, अनुपम किया विकास।
अमर रहेगा विश्व म, उनका वर इतिहास॥ ७॥

तुरत धम — आराधना, करत है विद्वान।
"मुनि कन्हैया" छोडकर, आलस निद्रा मान॥ ८॥

-थ-

थहराते कायर मनुज, देख भयकर कष्ट।
मुनि समता से सहन कर, करते कर्म विनष्ट ॥ १ ॥

थप्पड पर थप्पड़ सदा, खाता है अविनीत।
एक विनय-गुण के बिना, खोता जन्म पुनीत ॥ २ ॥

थर्राते कमजोर नर, देख तनिक नुकसान्।
कर पाते हैं क्या कभी, वे व्यापार महान ? ॥ ३ ॥

थकना मत तू बन्धुवर !, जाना काफी दूर।
चलते रहना धर्म का, ले सम्बल भरपूर ॥ ४ ॥

थक करके ससार मे, चाहता यदि विश्राम।
धर्म-वृक्ष की छाह मे, करले अब आराम ॥ ५ ॥

थर-थर काया कापती, आख न करती काम।
वृद्धावस्था मे कहा, मिलता है आराम ? ॥ ६ ॥

थलचर, जलचर, गगनचर, ये पञ्चेन्द्रिय जीव।
भोग रहे है जगत मे, निज-कृत दुःख अतीव ॥ ७ ॥

थकता है साधक नही, सतत साधना लीन।
"मुनि कन्हैया" साध्य को, पाता परम प्रवीण ॥ ८ ॥

-था-

थाम चित्त की चपलता, तप सयम से मित्र!।
जिससे पायेगा सही, अक्षय वित्त पवित्र ॥ १ ॥

था पहले इतना कहा, नर के तन म रोग।
किन्तु आज तो ज-मता, बच्चा भी सहरोग ॥ २ ॥

थावर अरु त्रस भेद युग जीव तत्व के जान।
स्थिर रहता स्थावर सतत, होता त्रस गतिमान ॥ ३ ॥

थातो (पूजो) सच्चो जगत में, शुद्धाचार विचार।
मानव जीवन का यही, है सच्चा शृंगार ॥ ४ ॥

थापी दे दे धो रहा, कपडो को मतिमान।
पर, मन को धोये बिना, होगा क्या कल्याण? ॥ ५ ॥

थानेदारी प्राप्त कर, मत लो झूठा पक्ष।
दूर रहो नित घूस से, करो न्याय निष्पक्ष ॥ ६ ॥

थाली का बेंगन नहीं, होता है नर—वीर।
प लेता निज—ध्येय को, सब कष्टों को चीर ॥ ७ ॥

थाह मिले भव सिन्धु का, कर गुरु—भक्ति अटूट।
'मुनि कन्हैया" फिर सदा, सहजानन्द अखूट ॥ ८ ॥

दयाशील नर का हृदय, होता मक्खन तुल्य।
सब जीवो का समझता, जीवन बहुत अमूल्य ॥ १॥

दश धर्मो मे प्रथम है, क्षमा धर्म अविकार।
हो जाते उसके बिना, तप जप सब बेकार ॥ २ ॥

दमन किया जिस मनुज ने, मन हस्ती का अत्र।
बन जाता है वह सही, जगतीतल — नक्षत्र ॥ ३ ॥

दर्पण मे मुख देखकर, खुश होता तू मित्र ! ।
पर, अन्दर मे है भरा, कितना मल अपवित्र ॥ ४ ॥

दहन द्वारिका का हुआ, मद्यपान के योग।
इससे वढ कर और क्या, होगा पाप—प्रयोग ? ॥ ५ ॥

दशा किसी की भी नही, रहती सदा समान।
वन मे राजा राम ने, संकट सहे महान ॥ ६ ॥

दर्शन दुर्लभ सत के, पारस रत्न समान।
जन्मान्तर-कृत पाप का, हो जाता अवसान ॥ ७ ॥

दया सुखो की वेल है, दया सुखों का द्वार।
"मुनि कन्हैया" है दया, जग—जीवन आधार ॥ ८ ॥

-दा-

दाता देते दान हैं करने अपना नाम।
पर, विरले दातार हैं, देते जो निष्काम ॥ १ ॥

दास बना जो आश का, वह दुनिया का दास।
जिसने आशा मार ली, जग है उसका दास ॥ २ ॥

दान, पात्र को दीजिए, होगा वह फलवान।
देना दान अपात्र को, है भुजग पय-पान ॥ ३ ॥

दानवीर आचार से आज कहाँ नर भीत ?।
बिना उच्च आचार के, कैसे होगी जीत ? ॥ ४ ॥

दाह-ज्वर के शमन हित, है चन्दन पर्याप्त।
पर, अन्तर के दाह को, कर सकता न समाप्त ॥ ५ ॥

दाह क्रिया का देख कर, होता चित्त विरक्त।
पर, घर आते ही पुन, हो जाता आसक्त ॥ ६ ॥

दाब (रोब) दिखाकर अगर से, करा न सकते काम।
बिना प्रेम के क्या कभी, होता काम ललाम ? ॥ ७ ॥

दारा कारा तुल्य है, जिनके धन है धूल।
"मुनि कन्हैया" सब वे, पाते सुख अनुकूल ॥ ८ ॥

-दि-

दिनमणि रहता लाल है, उदय-अस्त के काल।
एक—रूप सुख—दुःख मे, रहते संत विशाल ॥ १ ॥

दिग्-विजयी बनना सरल, बाह्य शत्रु को जीत।
किन्तु स्वय को जीतना, है यह विजय पुनीत ॥ २ ॥

दिन छोटे होते कभी, कभी बडे अत्यन्त।
होता है जग मे नही, विषम—भाव का अन्त ॥ ३ ॥

दिलचस्पी से काम जो, करते है इन्सान।
मिलती उनको सफलता, जीवन मे असमान ॥ ४ ॥

दिव्य दीप की ज्योति मे, पडता शलभ तुरत।
अज्ञ रूप मे मुग्ध हो, करता जीवन-अन्त ॥ ५ ॥

दिल रखता है साफ जो, करता कभी न पाप।
उस मानव की फैलती, महिमा अपने आप ॥ ६ ॥

दिखलावा है जगत मे, देखो चारो ओर।
ठोस काम का काम क्या, है यह कलयुग घोर ॥ ७ ॥

दिग्-दर्शन सिद्धान्त का, करवाते है सत।
"मुनि कन्हैया" पा सके, उससे भव का अन्त ॥ ८ ॥

-दु-

दुष्कर आत्मा का दमन, अपर दमन आसान।
दान्तात्मा नर को मिले, परम शान्ति का स्थान ॥ १ ॥

दुर्लभ मानव जन्म है, चिन्तामणि अनुहार।
कौड़ी के बदले इसे, मत खोना बेकार ॥ २ ॥

दुश्मन तेरा कौन है, सारा जग परिवार।
तेरी मेरी छोड़ कर, दिल को रखा उदार ॥ ३ ॥

दुर्जय पांचों इन्द्रियां, दुर्जय मन का दौर।
जो नर इसको जीतते, वे है जग—शिर—मौर ॥ ४ ॥

दुख मे माला फेरता, सुख मे जाता भूल।
इसीलिए तो पा रहा, मानव दुख प्रतिकूल ॥ ५ ॥

दुर्जन तजे न दुष्टता, जो है दुखद महान।
तो क्यों छोड़ें संत जन, सज्जनता सुख खान ॥ ६ ॥

दुर्गुण छोटा एक भी, करता है, नुकसान।
एक बूंद भी गरल की, हर लेती है प्राण ॥ ७ ॥

दुराचार के पंक मे, फंसना मत मतिमान!।
"मुनि कन्हैया" दुःख का मूल इसे पहिचान ॥ ८ ॥

-ध-

धर्म बिना पाता नही, शोभा नर का अग।
क्या अच्छा लगता कभी, बिना दात मातग ? ॥ १ ॥

धरणी जैसी धीरता, हो नर मे साकार।
तो क्या वह बनता नही, सब जग का आधार ? ॥ २ ॥

धन्य—धन्य मुनि-वृ द को, सहते भीषण कष्ट।
नही डोलते वे कभी, कचन गिरि-सम स्पष्ट ॥ ३ ॥

धन की खातिर बेचता, जो अपना ईमान।
उसका जग मे क्या कभी, होता है सम्मान ? ॥ ४ ॥

धवल वस्त्र पर चढ़ सके, चाहे जैसा रंग।
अतः छात्र को चाहिए, करना नही कुसग ॥ ५ ॥

धर्मवीर नर है वही, जो न करे अन्याय।
नही छोडता वह कभी, सकट मे भी न्याय ॥ ६ ॥

धडकन मिटती क्या कभी, जो झूठा एकान्त।
विना सत्य मानव कभी, क्या रह सकता शान्त ? ॥ ७ ॥

धम-धम करता वोलता, क्रोधी वनकर लाल।
"मुनि कन्हैया" क्रोध वश, मुनि वनता चण्डाल ॥ ८ ॥

-धा-

धाक जमा सकता वही, जो विपदा में धीर।
कायर मानव कष्ट में, होता तुरत अधीर॥ १ ॥

धार धार तू चित्त में गुरु की सीख अमोल।
जिससे बनता पूज्य है, चेला अगघड ढोल। २ ॥

धार्मिक मानव है वही, जिसका शुद्धाचार।
करता है वह सा नहीं, निन्दनीय व्यवहार॥ ३ ॥

धाय समझती पुत्र को, नहीं निजी संतान।
अनासक्त त्यों जगत में, श्रावक श्रद्धावान॥ ४ ॥

धागे वाली सूचिका मिल सकती आसान।
सूत्र बिना नर के लिए, कहा कठिन निर्वाण॥ ५ ॥

धारावाहिक दे रहे, भाषण लच्छेदार।
पर, प्रभाव पड़ता नहीं, उनका बिन आचार॥ ६ ॥

धावा करने मे तुझे, यदि आता आनन्द।
(तो) अन्तर अरि पर क्यों नहीं, करता है सानन्द ? ॥ ७ ॥

धाक न झूठे की पड़े, सत्य 'कन्हैया' बात।
रंग जमाता जगत पर, सच्चा नर साक्षात॥ ८ ॥

-घु-

घुनना मत सिर को कभी, सुनना ज्ञान सहर्ष।
क्या होता उसके बिना, नर—जीवन आदर्श ? ॥ १ ॥

धुन का पक्का कर सके, अपना पूरा काम।
अस्थिर मानव पा सके, कभी न सिद्धि ललाम ॥ २ ॥

धुल जाते हैं पाप सब, अगर भावना शुद्ध।
फिर क्यो रखता विज्ञ तू, अपना ध्यान अशुद्ध ॥ ३ ॥

धुपे नही मन—मलिनता, बाह्य स्नान से बुद्ध!।
विना आन्तरिक स्नान के, कब हो आतमा शुद्ध ॥ ४ ॥

धुकती जिनके हृदय मे, सतत लोभ की आग।
जल जायेगा क्या नही, उनके गुण का बाग ? ॥ ५ ॥

धुर से लेकर अन्त तक, जो सुनता व्याख्यान।
वह श्रोता ही पा सके, सम्यग् ज्ञान महान ॥ ६ ॥

धुआवार सिगरेट का, होता आज प्रचार।
किन्तु, कौन चारित्र का, करता आज प्रसार ? ॥

धुन से करना प्रभु—भजन, होगा बेडा पार।
"मुनि कन्हैया" चित्त की, है स्थिरता ही सार

गुण-गागर]

-न-

नत मस्तक रहता सदा जो है शिष्य विनीत।
रहता है गुरु के निकट, गर्वोन्नत अविनीत ॥ १ ॥

नकल मारता है नहीं जो ज्ञानेच्छुक छात्र।
विद्या धन, को प्राप्त कर, बनता श्रद्धा—पात्र ॥ २ ॥

नफरत करते हैं नहीं, पापी नर स संत।
क्या न बना देते उसे, धर्म—प्रिय अत्यन्त ॥ ३ ॥

नश्वर यौवन—संपदा, सध्या—राग समान।
उड जायेगा हंस यह, अपनी पाखें तान ॥ ४ ॥

नमनशील शुभ शील शिशु पाते विद्या—सार।
बिना नमे क्या मिल सके, घट को जल की धार ? ॥ ५ ॥

नशा न करना चाहिये, है यह व्यसन खराब।
रह पाती है क्या कभी, इससे नर की आब ? ॥ ६ ॥

नमक—हरामी मनुज का मत करना विश्वास।
जिस तरु का फल खा रहा, उसका करे विनाश ॥ ७ ॥

नर होकर, क्यों कर रहा औरों का अपकार ?।
"मुनि कन्हैया" क्या यही, है जीवन का सार ॥ ८ ॥

-ना-

नायक तेरापंथ के, श्री तुलसी गणपाल।
देते रहते है सदा, आगम—ज्ञान विशाल ॥ १ ॥

नाप—तोल मे लालची, खूब चलाते पोल।
किन्तु न क्या वे खो रहे, अपनी साख अमोल ?॥ २ ॥

नास्तिक लोग न मानते, स्वर्ग—नरक की वात।
पर, है सब के हित सुखद, सदाचार अवदात ॥ ३ ॥

नाटकशाला जगत यह, होते इसमे नृत्य।
कभी जीव—नट नृप वने, और कभी फिर भृत्य ॥ ४ ॥

नाच नचाता जीव को, कर्म—भूप हर—वार।
कभी भेजता स्वर्ग में, कभी नरक के द्वार ॥ ५ ॥

नाम लिया प्रभु का नही, किया न कुछ सत्काम।
चला गया परलोक मे, खोकर जन्म ललाम ॥ ६ ॥

नाव खडी मझधार मे, है तूफान अपार।
धर्म—रूप पतवार विन, किसका है आधार ? ॥ ७ ॥

नाज किया निज—शौर्य पर, रावण ने अविराम।
"मुनि कन्हैया" क्या नहीं, उसने खोया नाम ? ॥ ८ ॥

-नि-

निरालस्य नर कर सके, अपना आत्म—विकास।
कठिन नही उसके लिए, सहजानन्द — विलास ॥ १ ।

निर्दोषी के शीष पर, आता अगर कलंक।
उसे समझना चाहिये, कृत—कर्मों का रंग ॥ २ ।

निबिड बन्ध है मोह का, इसे तोडता वीर।
निकल न पाता है मधुप, कमल—पत्र को चीर ॥ ३ ।

निश्चल मन भगवान की, करो निरंतर भक्ति।
होगी निश्चित एक दिन, आत्म रूप अभिव्यक्ति ॥ ४ ।

निर्देशक की दृष्टि यदि, सब पर एक समान।
तो उसके नेतृत्व का, हो विश्वास महान ॥ ५ ॥

नियम कभी क्या तोडते, महापुरुष मतिमान ? ।
सागर रखता है सदा, निज-सीमा का ध्यान ॥ ६ ॥

निराकार चिद्रूप में, हो जाऊं मैं लीन।
मुझको ऐसी दीजिये, प्रभुवर ! शक्ति नवीन ॥ ७ ॥

निर्मल रखना हृदय को जैसे गंगा—नीर।
"मुनि कन्हैया" झट मिटे जन्म—मरण की पीर ॥ ८ ॥

-नु-

नुक्कड (मोड़) पर नित ध्यान तू, रखना गाड़ीवान ! ।
होता है हर—मोड मे, खतरे का आह्वान ॥ १ ॥

नुक्स देखता रात-दिन, ओरो मे अविनीत ।
अपने को वह जानता, स्फटिक—समान पुनीत ॥ २ ॥

नुक्ताचीनी अपर की, मत कर रे इन्सान ! ।
तुझे अगर वनना बड़ा, कर पर के गुण—गान ॥ ३ ॥

नुक्स देखती सास की, वहू आख को खोल ।
आपस मे कैसे खिले, प्रेम—पुष्प अनमोल ? ॥ ४ ॥

नुक्कड-नुक्कड़ पर खड़े, रहते भक्त तमाम ।
जव आते है शहर मे, गुरु जीवन—विश्राम ॥ ५ ॥

नुति (स्तुति) करना भगवान की, एक ध्यान अम्लान ।
वन जायेगा तू स्वय, पूजनीय भगवान ॥ ६ ॥

नुक्स निकाले जो तुरत, वनता वह निर्दोप ।
सद्गुण मय सपत्ति से, भरता अपना कोप ॥ ७ ॥

नुक्ता विन सूई वने, जग मे ज्यों वेकार ।
"मुनि कन्हैया" धर्म विन, त्यों नर—तन निस्सार ॥ ८ ॥

—प—

पर-गुण-अणु को मानता, पर्वत-तुल्य महान ।
अपने अवगुण बिन्दु को, सिन्धु-तुल्य, गुणवान ॥ १ ॥

परिमल विरहित फूल का, क्या होता सत्कार ? ।
रूपवान नर गुण बिना क्या न भूमि-पर भार ?॥ २ ॥

परिमार्जन निज भूल का, करने मे क्या लाज ? ।
आत्म-शुद्धि, जग प्रिय, बने, एक पथ दो काज ॥ ३ ॥

पग-पग पर जो पाप का, रखता हरदम ध्यान ।
कर सकता है वह मनुज, जीवन का कल्यान ॥ ४ ॥

पतितोद्धारक सुगुरु का, मत भूलो उपकार ।
करते पापी मनुज को, सद्धर्मी साकार ॥ ५ ॥

पक्षपात होती जहां, वहां कहा है न्याय ?
राग-द्वेष की वृत्ति से, होता है अन्याय ॥ ६ ॥

परिवर्तन को देखकर, क्यों घबराता मूढ ! ।
है स्वभाव यह जगत का, समझ तत्त्व यह गूढ ॥ ७ ॥

परिमित तेरी जिन्दगी जग मे कार्य अनन्त ।
'मुनि कन्हैया' पा सके, कैसे उनका अन्त ॥ ८ ॥

-पा-

पानी रखना क्या नहो, है अपने ही हाथ।
कभी न समझौता करे, दुराचार के साथ ॥ १ ॥

पादप के सहयोग से, फल लेकर पानीय।
वढता रहता है सदा, वन जाता स्तवनीय ॥ २ ॥

पानी की इक वूद मे, होते जीव अनेक।
फिर इसके आरम्भ मे, रखता क्यो न विवेक ? ॥ ३ ॥

पारस—मणि से लोह भी, वनता स्वर्ण उदार।
सत्सगति से अधम का, हो जाता उद्धार ॥ ४ ॥

पामर जन रहते सदा, विषय पक मे लीन।
निज-हित-अहित न देखते, होकर बुद्धि-विहीन ॥ ५ ॥

पारायण हर-कार्य मे, होता जो इन्सान।
वसुधा में उस मनुज का, बढता मोल महान ॥ ३ ॥

पावर हाऊस से सभी, होती शक्ति विकीर्ण।
होता गुरु की महर से, शिष्य शीघ्र उत्तीर्ण ॥ ७ ॥

पाप कटे तामस मिटे, प्रकटे दिव्य प्रकाश।
"मुनि कन्हैया" जो मिले, सद्गुरु का सहवास ॥ ८ ॥

-पि-

पिक हरती सब का हृदय, मीठी बोली बोल।
मधुर वचन से क्या नही, बढ़ता नर का मोल ?॥ १ ॥

पिता पुत्र सम्बन्ध भी बिगड़ रहे है आज।
कैसा कलियुग आ गया, चिंतित सकल समाज ॥ २ ॥

पिघल न जाते सत क्या, देख पराई पीर ?।
दयावान वे जगत को, दिखलाते दुख—तीर ॥ ३ ॥

पिछली वय में इन्द्रियां, हो जाती है हीन।
फिर क्या होता धम है ?, बनता अपर—अधीन ॥ ४ ॥

पिशुन न छोड़े पिशुनता, आदत से लाचार।
नही कभी वह पा सके, ऊंची गति का द्वार ॥ ५ ॥

पिछला दिन आता नही, करले यत्न हजार।
पापी मानव का समय, जाता है बेकार ॥ ६ ॥

पिष्टपेष जो कर रहा, उसका क्या है मोल।
अभिनव अनुभव—ज्ञान दे, उसका बढ़ता तोल ॥ ७ ॥

पिओ पिलाओ सुगुरु की, शिक्षामृत भी ग्लास।
"मुनि कन्हैया" पाप का, होगा उससे नाश "—"

-पु-

पुत्र राम—सम ना मिले, चाहे करो प्रयास।
पाकर आज्ञा तात की, चले गये वनवास ॥ १ ॥

पुस्तकीय अध्ययन से, कौन बना विद्वान ? ।
गुरु—गम ज्ञान विना नही, हो सकता उत्थान ॥ २ ॥

पुरुष—रत्न मानव वही, कहलाता है आज।
सदाचार मे रत सतत, रहता जो निर्व्याज ॥ ३ ॥

पुरस्कार मिलता स्वतः, जो रहता निष्काम।
भौतिक फल की कामना, वन जाती दुख-धाम ॥ ४ ॥

पुण्योदय से हाथ मे, आया सुरमणि रत्न।
चोर लुटेरे है बहुत, रखना इसका यत्न ॥ ५ ॥

पुद्गल मे सुख खोजता, रहता तू अनजान ! ।
आत्मा तेरी है स्वय, अमित सुखो की खान ॥ ६ ॥

पुलकित दिल से साधना, करते है जो संत।
वे पा सकते है सुखद, भव—सागर का अत ॥ ७ ॥

पुण्य प्रवर जिस मनुज का, उसकी जय—जयकार।
"मुनि कन्हैया" क्यों नही, करे धर्म अविकार ॥ ८ ॥

-फ-

फर्ज समझकर क्यों नही, करते जिनवर—धर्म ?।
है निज के हित के लिए, यही श्रेष्ठतर कर्म ॥ १ ॥

फल मिलता है पुरुष को, उप्त बीज—अनुसार।
क्यों बोता है आक का, बीज अरे! बेकार ? ॥ २ ॥

फणधर, मणिधर भी न क्या, होता भय का पात्र ?।
साक्षर भी दुर्जन पुरुष, होता भयद अमात्र ॥ ३ ॥

फहराओ जिन—धर्म की, विजय—ध्वजा सर्वत्र।
आध्यात्मिक सुख सपदा उससे अत्र परत्र ॥ ४ ॥

फलती विद्या विनय से विनयवान की सद्य।
हो न सके अविनीत का, ज्ञान कभी अनवद्य ॥ ५ ॥

फँसना मत गृहवास मे, रहना उससे दूर।
अजर अमर आनन्द तू, पायेगा भरपूर ॥ ६ ॥

फल्गु समय क्यों खो रहा, पर निंदा में अज्ञ ?।
ज्ञान प्राप्त कर सुगुरु से, क्यो न बने तत्वज्ञ ?॥ ७ ॥

फर्क न पडता सत की, वाणी म तिलमात्र।
"मुनि कन्हैया" वचन हित, तज देते वे गात्र ॥ ८ ॥

-फा-

फारिग हो गृह—कार्य से, सुनना गुरु—व्याख्यान।
शिक्षा—मोती चयन कर, पहनो हार महान ॥ १ ॥

फाका मारते (भूखा मरते) मनज जो, करते नही अनीति।
मुक्त कण्ठ उनकी सभी, गाते है गुण—गीति ॥ २ ॥

फाल मारना मत कभी, वुरे काम मे मित्र!।
भले काम से सर्वथा, रहता हृदय पवित्र! ॥ ३ ॥

फासी चढते वे मनुज, जो करते है खून।
उनके जीवन में कहा, खिलता सौख्य प्रसून ॥ ४ ॥

फाग खेलते है पुरुप, बन पागल बेभान।
मुख से गाते गालिया, खोते अपनी शान ॥ ५ ॥

फासी खाना मत कभी, होकर क्रोधावेश।
आत्म-हनन का मित्रवर!, जग मे पाप विशेष ॥ ६ ॥

फाइन (जुर्माना) है अन्याय का, यम राजा के द्वार।
चल सकता है कब वहा, रिश्वत का व्यापार? ॥ ७ ॥

फाटक खोलो धर्म का, करो पाप का बन्द।
"मुनि कन्हैया" पा सके, आत्मानन्द अमन्द ॥ ८ ॥

-फि-

फिक्र न करना - चाहिये रहना सदा प्रसन्न।
बढ़ सकता है नर वही, जिसका मन न विषण्ण ॥ १

फिरते फिरते जगत में बीता काल अनंत।
चौरासी के चक्र का कब आयेगा अन्त ॥ २

फिट—फिट मिलती सवदा, व्यभिचारी को प्राज्य।
नहीं टिकेगा जगत में, उसका इज्जत राज्य ॥ ३

फिरकाबाजी में कभी, पडता नहीं विदग्ध।
करता समता आग से, निज कर्मों को दग्ध ॥ ४

फिसलाना मत मन कभी, पर—धन को अवलोक।
रहना कायम नीति पर पायेगा सुख—थोक ॥ ५

फिसलना होती अथ म, फिसल रहे धन—लुब्ध।
धन पर पड़ते ही नजर, हो जाता मन क्षुब्ध ॥ ६

फिस (बेकार) हो जाते वृद्ध जो, उनका फिर क्या मोल
इस दुनिया मे स्वार्थ का, है साम्राज्य सतोल ॥ ७

फिरना पड़े न जगत में ऐसा करो प्रयोग।
"मुनि कन्हैया" झट मिटे, जन्मान्तर का रोग ॥ ८

-फु-

फुसलाकर के क्या कभी, दीक्षा देते सत ? ।
बहुत बडा यह पाप है, बतलाते भगवन्त ॥ १ ॥

फुरसत बिल्कुल है नहीं, पालन करने धर्म ।
भौतिकता में झूलते, भूले जीवन—मर्म ॥ २ ॥

फुरतीला नर जगत मे, लगता सबको इष्ट ।
मिलती है हर क्षेत्र मे, उसको सिद्धि अभीष्ट ॥ ३ ॥

फुंसी छोटी सी सही, ले जाती है प्राण ।
चिनगारी इक अनल की, करती अति नुकसान ॥ ४ ॥

फुरती रखकर धर्म की, गाडी पर आरूढ ।
हो जाओ सुख इच्छुको !, सुगुरु वचन ये गूढ ॥ ५ ॥

फुरना बायी आख का, है अनिष्ट यह योग ।
भजन करो भगवान का, मिट जाये सब रोग ॥ ६ ॥

फुरतीला नर काम सब, कर लेता तत्काल ।
किन्तु आलसी खो समय, हो जाता बेहाल ॥ ७ ॥

फुटकर—छुटकर बात में, ध्यान न देते धीर ।
"मुनि कन्हैया" अब्धि-सम, जिनका दिल गभीर ॥ ८ ॥

-ब-

बचन निभाना कष्ट मे, बहुत कठिन है काम।
चमक रहा इतिहास में, हरिश्चन्द्र का नाम ॥ १

बडा आदमी है वही, रहता जो मध्यस्थ।
पक्षपात से दूर नित, रहता है आत्मस्थ ॥ २

बचन हारना है नही, सत्पुरुषों का काम।
प्राण फूकते बचन—हित, रखने अपना नाम ॥ ३

बचपन खोया खेल में, यौवन नारी—साथ।
वृद्धावस्था में बना, रोगो का घर गात ॥ ४

बगुले ज्यों ढोंगी पुरुष, करते ढोंग अनेक।
सहने होगे नरक में, उनको दुख अतिरेक ॥ ५

बदनीयत से मनुज का, होता है नुकसान।
है निर्भर नर—नीति पर, पतन और उत्थान ॥ ६

बन जाता नर-दास है, और कभी नर नाथ।
कर्मों का फल भुगतता मानव हाथों-हाथ ॥ ७

बडी—बड़ी बातें करे, किन्तु न करते काम।
"मुनि कन्हैया" चित्र वे, फिर भी चाहे नाम ॥ ८

-बा-

वाल-वुद्धि से कव मिले, तात्विक गहन विचार।
हो सकता इसमे नही, मानव का उद्धार ॥ १ ॥

वाह्य शुद्धि के हेतु नर, करते हैं जल-स्नान।
किन्तु हृदय की शुद्धि विन, कैसे हो कल्याण ? ॥ २ ॥

वात वनाना सरल है, कठिन कार्य-निर्माण।
केवल लम्वी योजना, वना रहा इन्सान ॥ ३ ॥

वात पचाना पेट मे, कठिन कठिनतम काम।
विरले ही गभीर नर, छिछले तो हर-ग्राम ॥ ४ ॥

बात खोदना पूर्व की, है यह भारी भूल।
विज्ञ सोचता है सदा, भावी के अनुकूल ॥ ५ ॥

बात टालता शिष्य जो, गुरुवर की हर-बार।
कहलाता अविनीत वह, खोता नर—भव सार ॥ ६ ॥

बात फूकते मूढ नर, अवसर के अनभिज्ञ।
उत्तम अवसर देखकर, पीछे कहते विज्ञ ॥ ७ ॥

वालक दिल की सरलता, हरती सबका चित्त।
"मुनि कन्हैया" है यही, सच्चा जीवन - वित्त ॥ ८ ॥

-बि-

बिना क्रिया के सर्वदा, भारभूत है ज्ञान।
ज्ञान-क्रिया के मेल से, सिद्धि मिले आसान॥ १॥

बिना सुगुरु संयोग के, नही मिले सद्ज्ञान।
ज्ञान बिना होता नही, हृदय तिमिर-अवसान॥ २॥

बिजली के उद्योत-सम, नश्वर जीवन-रंग।
आत्मार्थी हित साधता, करके गुरु का संग॥ ३॥

बिकट समस्या जगत में, नैतिकता की आज।
नैतिक जीवन के बिना गिरता सकल समाज॥ ४॥

बिगड गया जिस मनुज का, खान—पान आचार।
हो जाता है जगत में, उसका जीवन भार॥ ५॥

बिपदा सहते हर्ष से, रखकर धैर्य महान।
घबराते है वे नही, सुख दुख एक समान॥ ६॥

बिल्ली चूहे की तरह, मूढ न तजते, वैर।
बिज्ञ भूल कर वैर को, हो जाते निर्वैर॥ ७॥

बिगुल काल का बज रहा, जाग जाग इन्सान।
"मुनि कन्हैया" तू यहां, दो दिन का महमान॥ ८॥

-बु-

वुद्धिशील नर जगत मे, होते हस समान ।
न्याय और अन्याय की, कर लेते पहचान ॥ १ ॥

वुद्धि-हीन हित-अहित का, कब रख सकता ध्यान ? ।
विन विवेक पाता सदा, जग मे दुःख महान ॥ २ ॥

वुरी मानना मत कभी, गुरु की शिक्षा मित्र ! ।
वन जाता नर-जन्म झट, इससे परम पवित्र ॥ ३ ॥

वुढ्ढा सब परिवार को, लगता विप - अनुहार ।
इस असार ससार मे, मतलव की मनुहार ॥ ४ ॥

वुद्ध मनुज करते नही, विना तथ्य की बात ।
ज्ञान-ध्यान मे मग्न वे, रहते है दिन—रात ॥ ५ ॥

वुरा भला मानव नहीं, वुरा भला है काम ।
होता कृत्य - अकृत्य से, नर का नाम कुनाम ॥ ६ ॥

बुरी भावना त्याग कर, रखना हृदय विशुद्ध ।
मानव का है धर्म यह, पालन करते बुद्ध ॥ ७ ॥

बुद्धिगम्य होती नही, शास्त्रों की सब बात ।
"मुनि कन्हैया" मानिये, श्रद्धा से साक्षात् ॥ ८ ॥

-भ-

भला करे जो जगत का, वह नर जग-शृंगार।
उसकी महिमा सुरभि से, सुरभित सब संसार॥ १॥

भजन करो भगवान का पाकर मानव-काय।
है आत्मा की शुद्धि का, उत्तम यही उपाय॥ २॥

भक्ति देखकर भक्त की, गुरु होते सन्तुष्ट।
आध्यात्मिक सद्ज्ञान का, देते सबल पुष्ट॥ ३॥

भय सच्चा है पाप का, यह सुधार का मूल।
इसके बिना न छूटते, नीच कृत्य प्रतिकूल॥ ४॥

भरत नृपति ने छोड़कर, अपना राज्य विशाल।
ग्रहण किया संयम सरस, बने मोक्ष-भूपाल॥ ५॥

भव के भय से भीत नर, क्या कर सकता पाप?।
मिल जाती शिव—सम्पदा, उसको अपने आप॥ ६॥

भग्न हृदय मानव कभी, क्या कर सकता काम?।
उत्साही हर-क्षत्र में, होता सफल प्रकाम॥ ७॥

भक्ष्याभक्ष्य न देखते, पढ़े लिखे भी मित्र!।
'मुनि कन्हैया' आ गया, कैसा समय विचित्र॥ ८॥

-भा-

भाग्य योग से हो मिले, सच्चे त्यागी सत।
कहा मिले उनके बिना, मोक्ष नगर का पथ ? ॥ १ ॥

भारत के इतिहास मे, रहा चरित का मान।
मगर आज तो हो रहा, धनिको का सम्मान ॥ २ ॥

भास्कर केवल कर सके, वाह्य तिमिर का नाश? ।
कौन करे सद्गुरु बिना, अन्तर—तम का नाश ॥ ३ ॥

भावी मनुज—समाज का, होगा तव निर्माण।
छात्र—वृ द पहले करे, अपना यदि उत्थान ॥ ४ ॥

भाल चमकता सूर्य—सम, शीलवान का अत्र।
ाता अविचल सम्पदा, निःसदेह परत्र ॥ ५ ॥

भाव बिना धार्मिक क्रिया, हो जाती बेकार।
क्या दासी को दान का, मिला लाभ अविकार ? ॥ ६ ॥

भार उठाते हैं स्वय, निज कधो पर सत।
कष्ट न देते अपर को, भय—भंजन भगवत ॥ ७ ॥

भावो की शुभ श्रेणि पर, चढे भरत चक्रीश।
"मुनि कन्हैया" वे बने, तीन लोक के ईश ॥ ८ ॥

-भि-

भिक्षा लेने संत गण, आते घर—घर द्वार।
लेता है हर—पुष्प से, मधुकर रस सुखकार॥ १॥

भिन—भिन करती मक्खियां, आती गुड पर दौड।
स्वार्थ बिना परिवार भी, लेता मुख को मोड॥ २॥

भिड जाने से गाडियां, होता अति घमसान।
रखने से गफलत तनिक, दुष्परिणाम महान॥ ३॥

भिक्षुक सच्चे है वही, जो हैं संयमवान।
महाव्रतों को मानते, अपना मूल निधान॥ ४॥

भिक्षाचर को हर जगह, मिलती है दुत्कार।
'मुनि, कन्हैया' तदपि वे, तजे न दीन विचार॥ ५॥

भित्ति अगर है खोखली, फिर क्या टिके मकान।
मन की स्थिरता के बिना, संयम नरक समान॥ ६॥

भिष्टा शूकर खा रहा, छोड धान का पात्र।
तजकर शील कुशील मे, रमता नित्य कुपात्र॥ ७॥

भिन्न—भिन्न आचार के, इस जग में हैं लोग।
"मुनि कन्हैया" नित रहे मुनि मध्यस्थ अरोग॥ ८॥

-भु-

भुवनेश्वर भगवान को, वन्दन शत—शत वार।
जिनके पावन स्मरण से, जीवन का उद्धार ॥ १ ॥

भुगताता जो काम को, यथा समय सविवेक।
उसका आदर सव जगह, करते लोग अनेक ॥ २ ॥

भुक्त—भोग नर का मिटा, क्या विकार का रोग ?।
आग दीप्त होती अधिक, इन्धन के सयोग ॥ ३ ॥

भुज—वल से क्या पा सके, भवसागर का पार ?।
सद्गुरु—रूपी नाव से, होता वेडा पार ॥ ४ ॥

भुजग—कञ्चुकी त्याग से, होता क्या अविकार ?।
वेप मात्र के त्याग से, होता क्या अनगार ? ॥ ५ ॥

भुगताता है क्या कभी, प्रभु जीवो को कर्म ?।
उदासीन नित जगत से, रहना जिसका धर्म ॥ ६ ॥

भुजा उठाकर जो कहे, मैं न करूगा पाप।
कौन नही उसका करे, जगती—तल मे जाप ?॥ ७ ॥

भुक्ति—विना है मुक्ति मे, क्या सुख, कहते अज्ञ।
"मुनि कन्हैया" समझते, भोग सार अनभिज्ञ ॥ ८ ॥

-म-

मन बढ़ता गुरुदेव का, यदि हो शिष्य विनीत।
एक विनय गुण के बिना, पाता दुख अविनीत ॥ १ ।

ममता मत कर रे मनुज!, ममता दुख की खान।
ममता के संयोग से, तू परतन्त्र महान ॥ २ ।

मर्कट की ज्यों फिर रहा, तेरा मन हर—बार।
मन की स्थिरता से मिले शास्त्र ज्ञान अधिकार ॥ ३ ।

मत्सर करता मत्सरी, पर की देख समृद्धि।
क्या वह खोता है नही, आत्म गुणों की ऋद्धि ? ॥ ४ ॥

मतवाला मन—द्विरद यह, भटक रहा हरबार।
संयम के अंकुश बिना, करता अहित अपार ॥ ५ ॥

महापुरुष हर—स्थान मे, करते पर—उपकार।
दीप कहां करता नही, तामस का प्रतिकार ? ॥ ६ ॥

मरता निश्चित एक दिन, जो जन्मा है अत्र।
फिर क्या करना शोक है, सुखद साम्य सर्वत्र ॥ ७ ॥

महल बनाता उच्चतम, देकर गहरी नींव।
'मुनि कन्हैया' छोडकर जाना है रे जीव! ॥ ८ ॥

-मा-

मान छोडते ही वने, बाहुबली सर्वज्ञ।
ज्ञान कहा है? विनय विन, कहते हे तत्वज्ञ ॥ १ ॥

माला जपना चाहिए, उठकर प्रात. नित्य।
जाग जाग तू वन्धुवर!, उदय हुआ आदित्य ॥ २ ॥

मार रहा जो जीव को, वन करके अति क्रूर।
रो—रो करके भुगतना, होगा दुख भरपूर ॥ ३ ॥

माथापच्ची जो करे, हठाग्रही गुरु—पास।
नही कभी मिलता उसे, तात्विक दिव्य प्रकाश ॥ ४ ॥

मायावी—नर का हृदय, रहता सदा मलीन।
कोई करता है नही, उसका कभी यकीन ॥ ५ ॥

मानवीय आचार को, भूल रहा इन्सान।
होगा भावी—देश का, कैसे अब उत्थान? ॥ ६ ॥

माता का आदर नही, करता है जो पुत्र।
उस मानव की जगत मे, शोभा होगी कुत्र? ॥ ७ ॥

मार्दवता पाषाण को, कर देती नवनीत।
"मुनि कन्हैया" मृदु मनुज, लेता सब को जीत ॥ ८ ॥

-मि-

मिलजुल रहना प्रेम से राम—भरत अनुसार।
शक्ति एकता में निहित, बतलाता संसार ॥ १ ॥

मित्र न कोई बन सके, बिना शुद्ध व्यवहार।
यही एक है जगत में, मैत्री का आधार ॥ २ ॥

मिथ्या—वादी पुरुष का, क्या होता विश्वास।
खो करके नर-जन्म वह, पाता नरकावास ॥ ३ ॥

मित भाषी नर के वचन, होते हैं आदेय।
पर, बहुभाषी मनुज का, भाषण होता हेय ॥ ४ ॥

मिले मिजाजी की नहीं, प्रकृति किसी के साथ।
रहता सबसे वह जुदा, पाता दुख दिन—रात ॥ ५ ॥

मिष्ट वचन से शत्रु भी, बन जाता है मित्र।
फिर क्यों मानव बोलता, कटु वाणी अपवित्र ॥ ६ ॥

मिथ्या मति नर कर रहा, अपना बहुत अनिष्ट।
सम्यग् दर्शन के बिना, फलवे नहीं अभीष्ट ॥ ७ ॥

मिले भाग्य के योग से, सुगुरु वैद्य सिर—ताज।
'मुनि कन्हैया" कर रहे, अन्तर रोग—इलाज ॥ ८ ॥

-मु-

मुक्ति गये थे वीर जव, अनुपम हुआ प्रकाश।
दीपावली तव से सभी, मना रहे सोल्लास ॥ १ ॥

मुनि होते सच्चे वही, जिनके अमिट विराग।
धन—दौलत परिवार से, जरा न जिनके राग ॥ २ ॥

मुश्किल सयम—साधना, मुश्किल मन—अवरोध।
मुश्किल अन्तर अरि-दमन, मुश्किल तात्विक बोध ॥ ३ ॥

मुक्त सकल संसार से, सयम से संयुक्त।
महाव्रती तत्वज्ञ मुनि, माया से उन्मुक्त ॥ ४ ॥

मुग्ध न होना रे मनुज!, देख मनोहर रूप।
यह तन तो मल मूत्र का, वना बनाया कूप ॥ ५ ॥

मुदित वना चातक रहे, जैसे सुन घन—नाद।
वैसे गुरु के दर्श से, भक्त—चित्त आल्हाद ॥ ६ ॥

मुठ्ठी मे मन को रखो, जब कि मिले पकवान।
विना खाद्य—सयम मनुज, पाता दुःख महान ॥ ७ ॥

मुसाफिरी लम्वी वहुत, सोच जरा इन्सान!।
"मुनि कन्हैया" साथ मे, लेना धर्म प्रधान ॥ ८ ॥

-य-

यन्त्र—मन्त्र मे पड गये, भूल स्वय का साध्य।
वे साधक कैसे बने, वसुधा मे आराध्य ॥ १ ॥

यथा—शास्त्र कर साधना, बनकर आत्माराम।
जिससे निश्चित ही मिले, अनुपम सुख का धाम ॥ २ ॥

यत्न करे धन के लिए, जितना यावज्जीव।
उतना करले धर्म—हित तो है जीत अतीव ॥ ३ ॥

यमपुर मे जाते समय, लेना सबल साथ।
सद्गुरु सच्ची सीख यह सुना रहे दिन—रात ॥ ४ ॥

यश—महिमा के हेतु जो मानव करते काम।
उनका दुनिया म नही, हो सकता है नाम ॥ ५ ॥

यत्र नही है कौच भी, तत्र बताता भव्य।
ऐसे झूठ पुरुष को, क्या होगी उपलब्धि ? ॥ ६ ॥

यज्ञ—हेतु हिसा, न क्या ?, हिसा है अनभिज्ञ ? ।
क्या पशुओ का वध करे, समझाते है विज्ञ ॥ ७ ॥

यत्र—तत्र क्या झाकना झाक स्वय की ओर।
"मुनि कन्हैया" यदि तुझे, पाना है भव—छोर ॥ ८ ॥

-या-

ात्रा सयम की सुखद, आत्मा बने विशुद्ध ।
या होता जल—स्नान से, अन्तर जीवन शुद्ध ? ॥ १ ॥

ाद करेगा विश्व सब, उपकारी से नित्य ।
या न धरा में तप रहा, राम-नाम आदित्य ? ॥ २ ॥

ाज्ञिक हिंसा मे कई, समझ रहे थे धम ।
किन्तु वीर ने धर्म का, सही बताया मर्म ॥ ३ ॥

ात्री ! तेरे मार्ग मे, डाकू खड़े अनेक ।
ावधान रहना सदा, उनसे तू सविवेक ॥ ४ ॥

ान नही इक चक्र से, कर सकता प्रस्थान ।
क्रिया—ज्ञान मिल कर करे, साध्य-सिद्धि निर्माण ॥ ५ ॥

ावत् नीति विशुद्ध है, तावत् रहती शान्ति ।
शुद्ध नीति को छोड़कर, पाता घोर अशान्ति ॥ ६ ॥

याम एक, दिन चढ गया, तू क्यो निद्रा लीन ?।
उपा काल मे प्रभु-भजन, करना हो तल्लीन ॥ ७ ॥

यावज्जीवन सयमी, (जो) रखता मन को शुद्ध ।
"मुनि कन्हैया" साधता, अपना साध्य विशुद्ध ॥ ८ ॥

-यु-

युद्ध अगर करना तुझे कर अन्तर अरि-साथ।
बाह्य युद्ध से क्या कभी, आयेगा कुछ हाथ? ॥ १

युक्तमना अध्ययन नित, करता है जो छात्र।
वह बन जाता क्या नहीं, श्रेष्ठ गुणों का पात्र? ॥ २

युवा—काल में इन्द्रियां, जो नर लेता जीत।
उस मानव का जग सदा गाता है गुण—गीत ॥ ३

युग यग तक उस पुरुष का, अमर रहेगा नाम।
जो करता उपकार नित, बिना स्वार्थ अविराम ॥ ४

युवती—जन का देखकर, सुदर रूप अनूप।
रहता जो अविकार है वह बनता शिव—भूप ॥ ५

युक्त—दंड अन्याय का देता जो भूपाल।
बनता है वह जग—मुकुट, लोक—प्रिय तत्काल ॥ ६

युवक! सरस आहार से, अधिक न भरना पेट।
खाद्य—असयम से मिले, यम की प्रखर चपेट ॥ ७

युक्ति—युक्त हितकर वचन, बोले जो इन्सान।
"मुनि कन्हैया" जगत म, उसका मान महान ॥ ८

-र-

रक्षक तेरा धर्म है, झूठा सब परिवार।
कभी न इसको छोड़ना, सद्गुरु—वचन उदार ॥ १ ॥

रत्न—त्रय दुर्लभ्य है, सुगुरु, सुदेव, सुधर्म।
इन पर नित श्रद्धा रखो, मिले शीघ्र शिव-शर्म ॥ २ ॥

रति सयम मे हो अगर, तव है सयम स्वर्ग।
और अरति के योग से, वनता सयम नर्क ॥ ३ ॥

रमण करो निज धर्म में, नन्दन-वन है धर्म।
धर्म बिना मिलता नही, मानव को शिव-शर्म ॥ ४ ॥

रक्षणीय क्या चीज है ?, सत्य शील अम्लान।
त्याज्य सतत क्या जगत मे?, ईर्ष्या, मत्सर, मान ॥ ५ ॥

रटन लगाते जोर की, मुख से हर—हर राम।
मगर हृदय की कुटिलता, रखता आठो याम ॥ ६ ॥

रत्नाकर-सम शिष्य जो, हैं गभीर विशाल।
सुगुरु वनाते है उसे, जिन-शासन की ढाल ॥ ७ ॥

रचना जग की देखकर, क्यों न छोड़ते भोग ?।
"मुनि कन्हैया" झट मिटे, जन्मान्तर के रोग ॥ ८ ॥

-रा-

राम राम मुह से रटे, मन में रखकर खोट।
खायेगा क्या वह नही, यमराजा की चोट ? ॥१

राई से पवत करे, जो मानव है दुष्ट।
उसका सग न सुखद है, हो चाहे वह तुष्ट ॥२

राजुल बैठी महल मे, करती करुण-पुकार।
छोड गये कैसे मुझे ?, प्रियतम नेमकुमार। ॥३

रागी नर क्या ले सके, दीक्षा गुरु के पास ?।
तोड न पाता मोह का, जो है दृढ़तम पाश ॥४

राजनीति से सतजन, रहते हैं नित दूर।
सहजानन्द—स्वरूप में रहते समता शूर ॥५

राग—द्वेष दो जगत में, वध बडे मजबूत।
उनको वे ही तोडते, जिनकी आत्मा पूत ॥६

राह, बताते सत - जन, सद्गति की हरवक्त।
सांसारिक सुख मे कभी, मत होना असक्त ॥७

राह देखता सुगुरु की, जो है सच्चा भक्त।
"मुनि कन्हैया' धम मे, रहता है अनुरक्त ॥८।

-रि-

रिश्वत छोटे से वडे, लेते हे निर्भीक।
निज-घर भरने के लिए, तोड रहे कुल-लोक ॥ १ ॥

रिपुता रखनी चाहिए, नही किसी के साथ।
मित्र-भावना से सदा, मिले शान्ति अवदात ॥ २ ॥

रिक्त जलद ज्यो गरजता, जो मानव वाचाल।
किन्तु न कुछ देता कभी, चलता टेढी चाल ॥ ३ ॥

रिपु, तेरे भीतर खडे, करते तेरी घात।
इनको कभी न जीतता, फिर सुख की क्या वात? ॥ ४ ॥

रिश्तेदारी स्वार्थ की, चारो ओर सजोर।
विना स्वार्थ निज वन्धु भी, बनता शत्रु कठोर ॥ ५ ॥

रिक्त-हाथ आया यहां, क्या लाया था साथ।
जायेगा सब छोड़कर, पर-भव खाली हाथ ॥ ६ ॥

रिहा मिले ससार से, कब मुझको भगवान!।
पल—पल ऐसी भावना, भाता हू अम्लान ॥ ७ ॥

रिश्ता करना है अगर, (तो) करो धर्म के साथ।
"मुनि कन्हैया" हर समय, रक्षक यह विख्यात ॥ ८ ॥

-रु-

रुचिकर लगता भव्य को, गुरुवर का व्याख्यान।
सुनता है वह ध्यान से, पाता सम्यग् ज्ञान ॥ १ ॥

रुक-रुक करके कर रहा, गुरुवर के गुण ग्राम।
पर, पर-निंदा के समय, रुकने का क्या काम ॥ २ ॥

रुदन कहीं पर हो रहा, कहीं हर्ष उत्साह।
बहुत कठिन है समझना, क्या है जग की राह ॥ ३ ॥

रुष्ट न पिता की देखता, जो है सुत अविनीत।
मनमानी नित कर रहा, खोता जन्म पुनीत ॥ ४ ॥

रुचिकर लगते भोग हैं, जो कि रम्य आपात।
पर, हैं वे फल-काल में, अति कड़वे साक्षात ॥ ५ ॥

रुग्ण मनुज को क्या कभी, स्वाद लगे पकवान ?।
रुचता नहीं अभव्य को, आत्म-ध्यान अम्लान ॥ ६ ॥

रुक्ष वृत्ति से जो नहीं, रहता जग के बीच।
वह मानव अघ बांधकर, पाता है गति नीच ॥ ७ ॥

रुकना मत साथी ! कभी, रहना तू गतिमान,।
'मुनि कन्हैया' दूर है, तेरा साध्य महान ॥ ८ ॥

-ल-

लज्जा जब तक आख मे, तब तक बहुत इलाज।
प्राण बिना क्या कर सके, वैद्यराज अधिराज ॥ १ ॥

लवण बिना भोजन नही, होता है स्वादिष्ट।
बिना चरित होना नही, नर का ज्ञान अभीष्ट ॥ २ ॥

ललचाना मत तू कभी, बाह्याडम्बर देख।
अपने आत्म-स्वरूप मे, रहना नित सविवेक ॥ ३ ॥

लपट, कुत्ते की तरह, फिरता घर-घर द्वार।
मिलती उसको सब जगह, बार - बार धिक्कार ॥ ४ ॥

लक्ष्य रहे अध्ययन का, करना आत्म—विकास।
उदर-पूर्ति के हित नही, विद्या का अभ्यास ॥ ५ ॥

लडना यदि है प्रिय तुझे, लड कर्मों के सग।
तो देखेगा एक दिन, मोक्ष नगर का रग ॥ ६ ॥

लघु मानव ही समझता, ये मेरे ये अन्य।
महापुरुष की दृष्टि मे, सारा विश्व अनन्य ॥ ७ ॥

लक्ष्मण जैसे बन्धुवर, नही मिलेगे आज।
"मुनि कन्हैया" बन्धु-हित, छोडा सब सुख-साज ॥ ८ ॥

-ला-

लाचारी से क्यो करे, मानव—नीचे काम।
स्वाभिमान का क्यों नही, रखता ध्यान ललाम ?॥ १ ॥

लात मार कर निकलते, भोगा को तत्काल।
करते संयम मे रमण, विज्ञ विराग विशाल ॥ २ ॥

लापरवाही से कभी, मत करना तू काम।
सावधानता से सफल, होते काम तमाम ॥ ३ ॥

लालन—पालन पुत्र का, करना कठिन प्रकाम।
माता अपने मोह से, कर सकती यह काम ॥ ४ ॥

लालच मे पडकर मनुज, खोते हैं निज साख।
साख बिना तो लाख की, हो जाती है राख ॥ ५ ॥

लांछन देना अपर पर, बड़ा भयकर पाप।
उसका फल पर—जन्म में, सहना पड़े अमाप ॥ ६ ॥

लाभ नहीं जिस काम में, मत करना वह काम।
कहलायेगा जगत में, कुशल पुरुष अभिराम ॥ ७ ॥

लाल न होना मत कभी, सुन रे मेरा लाल !।
"मुनि कन्हैया" क्रुद्ध नर, कहलाता चण्डाल ॥ ८ ॥

-लि-

लिखित लेख टलता नही, चाहे करो प्रयास।
होनहार के सामने, निष्फल सब आयास ॥ १ ॥

लिप्त न होना विषय मे, विषय दुखों की खान।
विषय हलाहल जहर है, बतलाते भगवान ॥ २ ॥

लिप्सा मत कर सुयश की, कर तू अच्छा काम।
होगा अपने आप ही, जग मे तेरा नाम ॥ ३ ॥

लिखते—पढते ध्यान से, जो कि छात्र दिन-रात।
कर सकते हैं प्राप्त वे, ठोस ज्ञान अवदात ॥ ४ ॥

लिप्साओं को रोक कर, मन को करलो शान्त।
इच्छाओ की वृद्धि से, रहता चित्त अशान्त ॥ ५ ॥

लिपि सतो की देखकर, करते सब आश्चर्य।
सूक्ष्माक्षर ये हाथ के, हस्त—कला है वर्य ॥ ६ ॥

लिंग देखकर वस्तु का, कर सकते हैं ज्ञान।
चेतनता के चिन्ह से, आत्म—ज्ञान आसान ॥ ७ ॥

लिखा पढा भी नर करे, निज-मन मे अभिमान।
"मुनि कन्हैया" है उसे, वृथा ज्ञान का दान ॥ ८ ॥

-लु-

लुब्ध अर्थ मे हो रहे, मानव बेअन्दाज।
करते है अन्याय वे, खोकर अपनी—लाज ॥ १

लुप्त—बुद्धि मानव नही, सोचे कृत्याकृत्य।
होता है सद्बुद्धि बिन, श्रेष्ठ न कोई कृत्य ॥ २

लुब्ध न होना रे मनुज! बाह्य रूप को देख।
अन्दर मला है भरा, कर तू जरा विवेक ॥ ३

लुक—छिप कर चाहे बुरा करले कोई काम।
होगा निश्चित एक दिन, वह तो प्रकट तमाम ॥ ४

लुच्चे मानव भटकते दुनियां मे चहुओर।
पाते आदर वे नहीं, सहते सकट घोर ॥ ५ ॥

लुचन करते हाथ से, त्यागी सत महान।
घोर कष्ट वे सह रहे हर्षित—मन अम्लान ॥ ६ ॥

लुप्त न होता विनय से लिया हुआ गुरु—ज्ञान।
कर लेता है शिष्य वह आत्मा का उत्थान ॥ ७ ॥

लुब्धक मानव का हृदय, होता दया—विहीन।
"मुनि कन्हैया" वह नहीं, पाता सुख अक्षीण ॥ ८ ॥

-व-

क्ता सच्चा है वही, जिसका शुद्धाचार।
उसकी वाणी का सतत, स्वागत है साकार॥ १॥

वक्त पड़े पर जो नही, देता दिल से साथ।
उस मानव से फिर कभी, कौन मिलाए हाथ ?॥ २॥

वक्र—वृद्धि नर का नही, होता मन अवदात।
क्या कोई चाहे कभी, उससे करना वात ?॥ ३॥

वक्र दृष्टि से देखता, क्यो पर नारी—रूप ?।
क्यो न चक्षु—सयम करे, पाये शान्ति अनूप॥ ४॥

चन—वद्ध मानव रहे, उसकी किम्मत अत्र।
है अस्थिर नर के लिए, स्थान न अत्र परत्र॥ ५॥

वचन—अगोचर जगत मे, गुरुवर का उपकार।
शिष्य न हो सकता उऋण, लाख करे उपचार॥ ६॥

वक्ष—स्थल नित धड़कता, झूठे का सर्वत्र।
खोता अत्र प्रतीति वह, पाता दुःख परत्र॥ ७॥

वचन निकालो सोच कर, वचन रत्न अनमोल।
"मुनि कन्हैया" वचन से, वढ़ता नर का तोल॥ ८॥

-झ-

झारी भरले ज्ञान—मय, पानी से रे बन्धु !।
पार उतरना है अगर, घोर कष्टमय—सिन्धु ॥ १ ॥

झाड़ी घन मिथ्यात्व की, भीषण भयद कुरूप।
इससे तेरा छिप रहा, सच्चा आत्म-स्वरूप ॥ २ ॥

झाड़ू तप का हाथ में, लेकर के मतिमान !।
आत्म भवन को क्यों नहीं, करता है अम्लान ?॥ ३ ॥

झाड़ बड़ा खजूर का, चढ़ना कठिन महान।
विरले ही फल पा सकें, मीठे अमृत समान ॥ ४ ॥

झालर लेकर हाथ में, रोज बजाता भक्त।
पर, होता है क्या कभी प्रभु-गुण में अनुरक्त ?॥ ५ ॥

झाग सलिल के है क्षणिक, क्षणिक तड़ित उद्योत।
नर का जीवन है क्षणिक, क्षणिक जवानी-स्रोत ॥ ६ ॥

झाल उठे जिसके नहीं, पर का देख विकास।
उस मानव का क्या नहीं, हो जाता जग-दास ?॥ ७ ॥

झांक रहा है क्यों नहीं, निज दोषों की ओर।
'मुनि कन्हैया' यदि तुझे, पाना है भव-छोर ॥ ८ ॥

झुककर ले सकता तुरत, गुरु से विद्या—दान।
क्या ले सकता है कभी, अभिमानी गुरु—ज्ञान ?॥ १ ॥

झुक कर जो दरखत रहे, वे बढते निज स्थान।
वेत्रवती सरिता नही, कर सकती नुकसान ॥ २ ॥

झुरियो से यह भर गया, तेरा सकल शरीर।
अब तो करले धर्म तू, पायेगा भव—तीर ॥ ३ ॥

झुलसाना (जलाना) मत हृदय को, भीषण देख विरोध।
समता से होगा वही, तेरे लिए विनोद ॥ ४ ॥

झुरना मत मतिमान ! तू, इष्ट वियोग-निहार।
रखना लाभ अलाभ मे, प्रतिदिन सम व्यवहार ॥ ५ ॥

झुझलाते (चिडचिडाते) हैं जो मनुज, बात-बात पर प्राज्य।
उनको कभी न मिल सका, अचल शान्ति का राज्य ॥ ६ ॥

झुठलाना (धोखा देना) मत तू कभी, रखना दिल को साफ।
इससे बढ कर और क्या, होगा जग में पाप ॥ ७ ॥

झुक जाता तरुवर स्वयं, पा फलादि समृद्धि।
"मुनि कन्हैया" गर्व क्यों, करता पाकर ऋद्धि? ॥ ८ ॥

-ट-

टक्कर (मांघकर) के नव घाटिया, पाया नर भव-योग।
क्यों करता है अब नहीं, संयम में उद्योग ?॥ १ ॥

टलना (खिसकना) मत निज धर्म से, देख आपदा घोर।
धीरे धीरे नर पा सके भव-सागर का छोर ॥ २ ॥

टहल बजाते (सेवाकरते) शिष्य जो, सदगुरु की सह भक्ति।
पाते आगम ज्ञान की, अविचल अविकल शक्ति ॥ ३ ॥

टर--टरी कई बाधकर दरे रहे चहु ओर।
जबकि उमड़ती मेघ की, नभ में घटा सजोर ॥ ४ ॥

टाराबाग भीड़ में, यदि न रखोगे ध्यान।
थोड़ी सी भी चूक से, होता अति नुकसान ॥ ५ ॥

टहनी दुष्टाचार की, फल देती क्या कान्त।
नौका कागज की स्वयं, होती नष्ट नितान्त ॥ ६ ॥

टरा पास रहता नहीं, जबतक विधि प्रतिकूल।
शूल बन माला न क्या, दिन हो यदि अनुकूल ?॥ ७ ॥

टले नहीं तिल मात्र भी लिखा हुआ जो लेख।
मुनि "कन्हैया" जगत में, आगे मोसकर देख ॥ ८ ॥

-टा-

टापू—सम जिन-धर्म है, सब जग का आधार।
लेकर के इसकी शरण, प्राप्त करो भव-पार ॥ १ ॥

टाल—मटोल न कीजिये, करने सद्गुरु—सग।
भाग्य-योग से ही मिले, ऐसा समय सुरग ॥ २ ॥

टाइम को करते सफल, कर, पर-हित विद्वान।
कलह कदाग्रह व्यसन मे, खोते मूर्ख महान ॥ ३ ॥

टाली अणुव्रत धर्म की, बजती चारो ओर।
स्वागत है हर—क्षेत्र मे, उसका आज सजोर ॥ ४ ॥

टाग अडाते द्वेष—वश, मानव बुद्धि—विहीन।
कितना अच्छा हो अगर, रहे धर्म मे लीन ॥ ५ ॥

टाग तले से निकलता (पराजित हो), कभी नही मतिमान।
राग-द्वेष को जीतकर, रखता अपनी शान ॥ ६ ॥

टाग उठाते धर्म मे, नही आलसी लोग।
भोगेगे वे जगत मे, आधि-व्याधि के रोग ॥ ७ ॥

टाट उलटता (दिवाला दिखाना) है नही, जो सज्जन इन्सान।
"मुनि कन्हैया" समझते, पर-धन धूलि—समान ॥ ८ ॥

-टि-

टिकट बिना यात्रा कभी, मत करना तू आर्य।
मानवता के नियम का, पालन है अनिवार्य ॥ १ ॥

टिक टिक करती दे रही घड़ी शुभकर सीख।
सत्य—धर्म के मार्ग पर टिकते रहना ठीक ॥ २ ॥

टिप्पण लिखना सोचकर, प्रामाणिकता — युक्त।
चिन्तन—पूर्वक लेख हो होता है उपयुक्त ॥ ३ ॥

टिपका जल भी रात्रि में ना पी सकते संत।
बहुत कठिन है जगत में जैनी मुनि का पंथ ॥ ४ ॥

टिड्डी, शोषण लोभ की, जड़ा फसली स्पष्ट।
सद्गुण—रूपी खेत को कर देती है नष्ट ॥ ५ ॥

टिकना अपने सदन में मत जाना पर गेह।
निज—घर में हो पुरुष का, आदर निःसंदेह ॥ ६ ॥

टिपटिप टपके अल्प भी, गिरता हो बरसात।
भिक्षा हित जाते नहीं, जैनी मुनि साक्षात् ॥ ७ ॥

टिल्ला ऐसा मारना, कर्म होय चकचूर।
'मुनि कन्हैया' अन्त में, मिले सौख्य भरपूर ॥ ८ ॥

-ठ-

ठगकर के लोभी मनुज लेते दुगने दाम।
पर पसा अ याय का, क्या देता आराम ? ॥ १ ॥

ठग विद्या से जगत को, ठगते कई हराम।
अ दर चलती कतरणी मुख पर राधश्याम ॥ २ ॥

ठगते है ठग जगत को, धर बगुल का ध्यान।
ऊपर स उज्ज्वल बहुत अन्दर स मन म्लान ॥ ३ ॥

ठकुराई चलती नहीं जब आता, यमराज।
झुकते उसक सामने, बड़—बड, अधिराज ॥ ४ ॥

ठस (कजूस) मानव क्या कर सक, अर्जित धन का भाग ?।
सञ्चित मधु का मक्खिया कर न सक उपभोग, ॥ ५ ॥

ठट्ठा—ठोला क समय, तनिक न रहता भान।
आखिर उसका निकलता, दुष्परिणाम महान् ॥ ६ ॥

ठहर—ठहर कर बीच म, क्या लता विश्राम।
व्याकुल होगा धूप म, कब आयगा ग्राम, ॥ ७ ॥

ठप हो जात काम सब, जब न रह विश्वास।
'मुनि म देवा" फिर नहीं, यह कर सक विकास ॥ ८ ॥

-ठ-

ठार (पाला) भयंकर देखकर, मत कर मन कमजोर।
कष्टों में रहना अटल, मानव! तू हर ठौर॥ १॥

ठांव—ठांव पर बन रहे, अनुपम [illegible] [illegible]।
मानवता के निम्न हैं, करना निज उत्थान॥ २॥

ठाले बैठे पुरुष का, मन करता उत्पात।
कार्य-परायण की कभी, नहीं बिगड़ती बात॥ ३॥

ठाठ वाह्य तू देखकर, भूला आत्मिक धर्म।
विपय पंक मे मग्न हो, क्यों बांधे तू कर्म?॥ ४॥

ठाट मारते (चैन करते) विपय में, कितने विषयी लोग।
त्यागी पडित समझते, विपय-भोग को रोग॥ ५॥

ठाकुर की सेवा करे, समय लगाते प्राज्य।
मगर हृदय की शुद्धि विन, नहीं मिले शिव राज्य॥ ६॥

ठाठ (भेप) वदलकर लूटते, ढोंगी वे — अदाज।
सतर्क रहना रे मनुज!, वरना विगड़े काज॥ ७॥

ठाट—वाट को देखकर, मत कर मन मे मान।
"मुनि कन्हैया" एक दिन, निश्चित है अवसान॥ ८॥